नवंबर–2022

अखण्ड ज्योति

धर्म एवं अध्यात्म के तत्त्वज्ञान का वैज्ञानिक विश्लेषण

वर्ष–86 । अंक–11 । ₹–25 प्रति । ₹–300 वार्षिक

13 नारी की गौरव-गरिमा पुनः प्रतिष्ठित हो
20 राष्ट्र की भाषा है हिंदी
25 वेदों में नारी
47 भारतीय दर्शन की विश्वव्यापी धमक
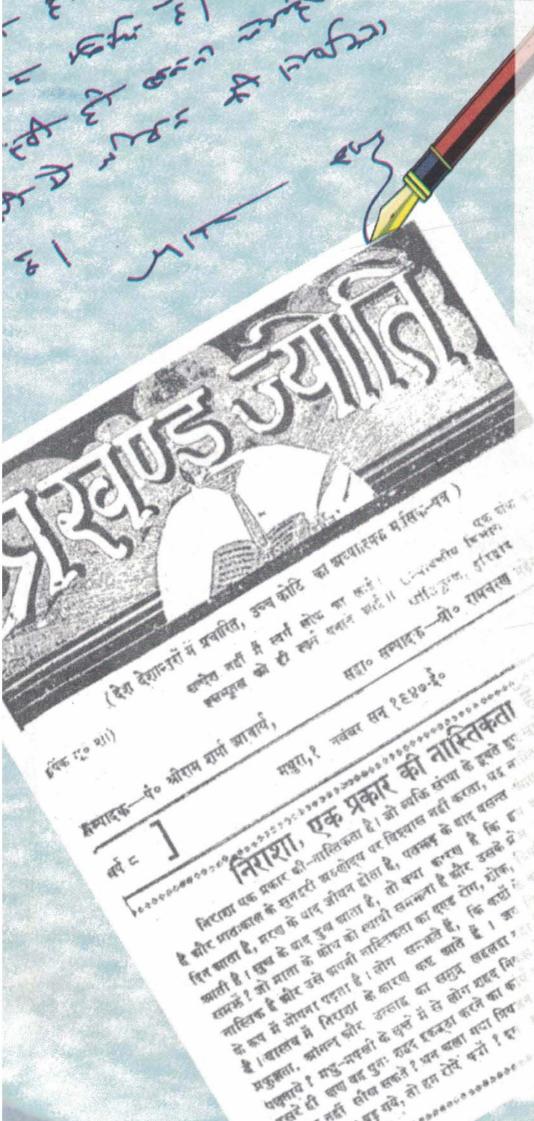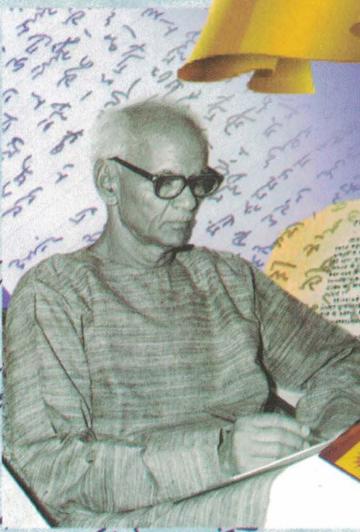
निराशा एक प्रकार की नास्तिकता है

“ निराशा एक प्रकार की नास्तिकता है। जो व्यक्ति संध्या के डूबते हुए सूर्य को देखकर दुःखी होता है और प्रातःकाल के सुनहरी अरुणोदय पर विश्वास नहीं करता, वह नास्तिक है। जब रात के बाद दिन आता है, मरण के बाद जीवन होता है, पतझड़ के बाद वसंत आता है, ग्रीष्म के बाद वर्षा आती है। सुख के बाद दुःख आता है, तो क्या कारण है कि हम अपनी कठिनाइयों को स्थायी समझें? जो माता के क्रोध को स्थायी समझता है और उसके प्रेम पर विश्वास नहीं करता, वह नास्तिक है और उसे अपनी नास्तिकता का दंड रोग, शोक, विपत्ति, जलन, असफलता और अल्पायु के रूप में भोगना पड़ता है। लोग समझते हैं कि कष्टों के कारण निराशा आती है, परंतु यह भ्रम है। वास्तव में निराशा के कारण कष्ट आते हैं। जब विश्व में चारों ओर प्रसन्नता, आनंद, प्रफुल्लता और उत्साह का समुद्र लहलहा रहा है, तो मनुष्य क्यों अपना सिर धुने और पछताए? मधुमक्खी के छत्ते में से लोग शहद निकाल ले जाते हैं, फिर भी वह निराश नहीं होती। दूसरे ही क्षण वह पुनः शहद इकट्ठा करने का कार्य आरंभ कर देती है। क्या हम इन मक्खियों से कुछ नहीं सीख सकते? धन चला गया, प्रियजन मर गए, रोगी हो गए, भारी काम सामने आ पड़ा, अभाव पड़ गए, तो हम रोएँ क्यों? कठिनाइयों का उपचार करने में क्यों न लग जावें। ”

— पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य

संस्थापक-संरक्षक
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य
एवं
शक्तिस्वरूपा
माता भगवती देवी शर्मा
संपादक
डॉ० प्रणव पण्ड्या
कार्यालय
अखण्ड ज्योति संस्थान
घीयामंडी, मथुरा (281003)
दूरभाष नं० (0565) 2403940, 2402574
2412272, 2412273
मोबाइल नं० 9927086291
7534812036
7534812037
7534812038
7534812039
कृपया इन मोबाइल नंबरों पर एस. एम. एस. न करें।
नया ईमेल-
akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org
प्रातः 10 से सायं 6 तक

वर्ष	:	86
अंक	:	11
नवंबर	:	2022
कार्तिक-मार्गशीर्ष	:	2079
प्रकाशन तिथि	:	01.10.2022

वार्षिक चंदा

भारत में	:	300/-
विदेश में	:	1800/-

आजीवन (बीसवर्षीय)

भारत में	:	6000/-

कल्पवृक्ष

पौराणिक गाथाओं में कल्पवृक्ष के विषय में विवरण आता है। ऐसा कहा एवं माना जाता है कि उसकी पूजा-उपासना करने से, उसके आश्रय में बैठने से मनोवांछित कामनाओं की पूर्ति होती है। स्वर्ग में उपस्थित कल्पवृक्ष की सत्यता को सिद्ध कर पाना भले से संभव न भी हो सके, परंतु धरती पर मनुष्य जीवन के रूप में जिस सुअवसर को प्राप्त कर पाने का लाभ हमें मिला है, उसकी तुलना निश्चित रूप से कल्पवृक्ष के अस्तित्व से की जा सकती है।

यह मनुष्य जीवन अद्भुत संभावनाओं से युक्त, अनुपम विभूतियों का प्रदाता और असाधारण परिणामों को जन्म देने वाला है। इसे दिव्य भी कहा जा सकता है और महानतम भी। इस मानवीय जीवन के गर्भ में जो संभावनाएँ एवं सिद्धियाँ समाहित हैं, उनको देखते हुए इस जीवन के विषय में जितना भी कहा जाए या लिखा जाए—वह कम ही सिद्ध होगा।

सत्य यही है कि यह मानवीय जीवन हमारे लिए सबसे प्रत्यक्ष, निकटवर्ती और तुरंत वर देने वाला देवता है। यदि इस मनुष्य जीवन का सदुपयोग किया जा सके तो कल्पवृक्ष की भाँति इस जीवन में से अमूल्य वरदानों की शृंखला को प्राप्त किया जा सकता है। आज तक का मानवता का इतिहास इस तथ्य का सुनिश्चित प्रमाण है कि जिन्होंने भी मनुष्य जीवन के रूप में मिली संपदा का विवेकपूर्ण तरीके से उपयोग किया है वे न कभी पिछड़े रहे और न ही उनके अंतराल में किसी तरह के पश्चात्ताप ने जन्म लिया। यह मनुष्य का जीवन भी कल्पवृक्ष के सदृश है—शर्त एक ही है कि उससे अभीष्ट की प्राप्ति हेतु उसका श्रेष्ठतम उपयोग करने की विधि-व्यवस्था बनाई और अपनाई जाए। ❐

▶ 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◀

विषय सूची

- आवरण—1 1
- आवरण—2 2
- कल्पवृक्ष 3
- **विशिष्ट सामयिक चिंतन**
  पात्रता के अभिवर्द्धन से भारत का सांस्कृतिक नवनिर्माण संभव 5
- जीवन-साधना का व्यावहारिक तत्त्वदर्शन 7
- बढ़ चलें आत्मसाधना के पथ पर 9
- **पर्व विशेष (गीता जयंती)**
  श्रीमद्भगवद्गीता का शाश्वत संदेश 11
- नारी की गौरव-गरिमा पुनः प्रतिष्ठित हो 13
- ध्यान बिना नहीं ज्ञान 16
- रुद्राक्ष—औषधीय गुणों से भरपूर दिव्य वृक्ष 18
- राष्ट्र की भाषा है हिंदी 20
- गुरु की शरणागति से शिष्य को मिलता है शाश्वत सुख 23
- वेदों में नारी 25
- संयम और सादगी भरे तपोमय जीवन का आदर्श 28
- **पूज्य गुरुदेव जेसा मैंने देखा-समझा—2**
  युगप्रवाह की मूर्तिमान प्रेरणा 29
- बच्चों व किशोरों में फैलती स्मार्टफोन की लत 32
- आत्मदृष्टि से जीवन बनता है उत्सव 35
- **चेतना की शिखर यात्रा—242**
  यथार्थ की कसौटी पर विश्वास 37
- तनाव से रहें दूर, जीवन जिएँ भरपूर 40
- **ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार—163**
  गर्भावस्था पर वैज्ञानिक शोध 42
- परिवार-व्यवस्था का हो संरक्षण 45
- भारतीय दर्शन की विश्वव्यापी धमक 47
- **युगगीता—270**
  शास्त्रविरुद्ध है दंभयुक्त घोर तप 50
- युगतीर्थ शांतिकुंज हरिद्वार 52
- **परमवंदनीया माताजी की अमृतवाणी**
  गायत्री की चमत्कारिक शक्ति 53
- **विश्वविद्यालय परिसर से—209**
  विश्वव्यापी विस्तार का वाहक बना देव संस्कृति विश्वविद्यालय 58
- गायत्री परिजन होने के नाते हमारे दायित्व 61
- **अपनों से अपनी बात**
  इस भूतल को ही मैं स्वर्ग बनाने आई 63
- अखण्ड ज्योति की ज्ञान किरण से (कविता) 66
- आवरण—3 67
- आवरण—4 68

आवरण पृष्ठ परिचय

सिख धर्म के संस्थापक श्री गुरुनानक देव जी

नवंबर-दिसंबर, 2022 के पर्व-त्योहार

बुधवार	02 नवंबर	अक्षय नवमी
शुक्रवार	04 नवंबर	देव प्रबोधिनी एकादशी
मंगलवार	08 नवंबर	गुरुनानक जयंती/ पूर्णिमा व्रत/देव दीपावली
सोमवार	14 नवंबर	बाल दिवस
रविवार	20 नवंबर	उत्पत्ति एकादशी
मंगलवार	29 नवंबर	सूर्य षष्ठी
शनिवार	03 दिसंबर	मोक्षदा एकादशी/ गीता जयंती
बुधवार	07 दिसंबर	दत्तात्रेय जयंती
सोमवार	19 दिसंबर	सफला एकादशी
रविवार	25 दिसंबर	क्रिसमस
बुधवार	28 दिसंबर	सूर्य षष्ठी
गुरुवार	29 दिसंबर	गुरु गोविंद सिंह जयंती

★ **यह पत्रिका आप स्वयं पढ़ें तथा औरों को पढ़ाएँ। कुछ समय के बाद किसी अन्य पात्र को दे दें, ताकि ज्ञान का आलोक जन-जन तक फैलता रहे।** —*संपादक*

▶'नारी सशक्तीकरण' वर्ष◀

विशिष्ट सामयिक चिंतन

पात्रता के अभिवर्द्धन से भारत का सांस्कृतिक नवनिर्माण संभव

वर्षों पहले जब स्वामी विवेकानंद के भारत लौटने पर उनसे लोगों ने प्रश्न किया कि वे पाश्चात्य देशों की एक लंबी यात्रा पर रहे तो उससे उन देशों के निवासियों को तो लाभ मिला, पर उसका उनको क्या लाभ मिला? तो उस प्रश्न का उत्तर स्वामी विवेकानंद ने ये ही कहकर दिया कि विदेश जाने का जो सबसे बड़ा लाभ मुझको मिला वो यह मिला कि पहले जिन बातों को मैं भावना के आवेश में आकर सत्य मान लिया करता था, अब उनको प्रमाणपूर्वक सत्य मानता हूँ।

वे बोले—"मैं छोटा था तो सभी कहते थे कि भारत एक पवित्र भूमि है तो मैं भी उस बात को दोहराया करता था, पर अब मैं इतने वर्षों तक मातृभूमि से दूर रहा हूँ तो इस बात को और ज्यादा गहरे विश्वास के साथ कह सकता हूँ कि यह बात पूरी तरह से सत्य है। इसी देश भारत से संपूर्ण विश्व को प्रकाशित करने वाली ज्ञान की धारा के बहने का समय आने वाला है।"

जो बात स्वामी विवेकानंद द्वारा आज से वर्षों पूर्व कही गई थी वो बात शब्दश: सत्य ही है। यदि इस देश की धरती से योग की, तप की, ध्यान की, ज्ञान की, दर्शन की और दिव्यता की धाराएँ न बही होतीं तो संभवतया उस मानवीय मेधा का जन्म ही न हो पाया होता, जिसके ऊपर आज मनुष्य इतना गौरवान्वित होता दिखाई पड़ता है। इस संपूर्ण विश्व को संस्कृति व सभ्यता का उपहार यदि किसी एक देश से मिला है तो वो निश्चित रूप से भारत की धरती से मिला है।

भारत सच पूछा जाए तो एक देश मात्र का नाम नहीं है, बल्कि एक संस्कृति का नाम भी है। एक ऐसी संस्कृति का नाम है, जहाँ से मानवीय उत्कृष्टता का उदय हुआ है, इस सोच का उदय हुआ है कि एक अच्छा इनसान बनने के लिए हमें किन गुणों की आवश्यकता होती है? इस सोच का उदय हुआ कि एक अच्छा इनसान बनने के लिए हमें किन मूल्यों की आवश्यकता होती है।

भारतीय संस्कृति ने ही पूरे विश्व को इस सोच से अवगत कराया कि इनसान की सच्ची कीमत बाहर की सफलता से नहीं, बल्कि भीतर की पात्रता से आती है और आज जब हम भारत के सांस्कृतिक नवनिर्माण की बात करते हैं तो उसका आधार वही पात्रता का अभिवर्द्धन हो सकता है।

आध्यात्मिक उत्कर्ष के लिए पात्रता ही एकमात्र और सच्ची कसौटी कही जा सकती है। भौतिकता की दृष्टि से भी किसी व्यक्ति को अपेक्षित सफलता पाने के लिए किसी-न-किसी तरह की पात्रता की जरूरत होती है। भौतिक जगत् में सफलता को प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति के पास या तो उचित शैक्षणिक योग्यता हो या ज्ञान हो या अनुभव हो—इनमें से किसी-न-किसी का होना हमारे भौतिक दृष्टि से सफल होने के लिए अनिवार्य हो जाता है।

तीर-तुक्के से, धोखाधड़ी से, लॉटरी जीतकर, डाका डालकर—मनुष्य तात्कालिक लाभ तो ले सकता है, पर उस लाभ को जीवन का स्थायी नियम नहीं कह सकते हैं। लंबे समय की सफलता, अपने जीवन की दिशा को सही करने के प्रयास सफल तो तभी हो पाते हैं, जब हमारे भीतर चुने गए क्षेत्र में अपनी योग्यता को सिद्ध करने का जज्बा हो। हमारे अंदर पात्रता हो तो हम सफलता प्राप्त कर पाते हैं और यदि हम सफलता प्राप्त कर चुके हैं तो उस पात्रता के आधार पर ही स्थिर और दृढ़ रह पाते हैं। भौतिक क्षेत्र में सफलता के लिए अपेक्षित पात्रता की आवश्यकता होती है।

जब भौतिक क्षेत्र में बिना पात्रता के व्यक्ति एक छोटी-सी नौकरी नहीं ले पाता तो आध्यात्मिक क्षेत्र की बड़ी-बड़ी सफलताएँ बिना पात्रता की परीक्षा दिए किस तरह से मिल सकती हैं? भारतीय चिंतन ने इस बात को गहराई के साथ अनुभव किया कि पात्रता का अभिवर्द्धन ही आध्यात्मिक उन्नति का एकमात्र आधार है। आप इतिहास, पुराण, धर्मशास्त्र सभी पढ़कर देख सकते हैं और इस बात को महसूस कर सकते हैं कि आध्यात्मिक दृष्टि से उन्नत हर व्यक्तित्व को पात्रता की यह परीक्षा देनी ही पड़ी थी।

भारतीय संस्कृति के अनुसार व्यक्तित्व की श्रेष्ठता पात्रता की परीक्षा देने पर ही तय हो पाती है और आज की विक्षोभ से भरी परिस्थितियों में उन पर चिंतन और भी ज्यादा जरूरी हो जाता है। ऐसा इसलिए; क्योंकि आज अनेकों के चिंतन में यह भ्रम कहीं से विद्यमान हो गया है कि अध्यात्म के क्षेत्र में, सूक्ष्म के क्षेत्र में कोई विधान-अनुशासन नहीं है। मनुष्य कैसा भी जीवन जिए, पर यदि वो पूजा-उपासना कर दे तो सारी गलतियाँ माफ हो जाती हैं। सच्चाई इसके बिलकुल विपरीत है। सच्चाई यह है कि भारतीय संस्कृति का चिंतन आध्यात्मिक उत्कर्ष का मूल आधार ही पात्रता के अभिवर्द्धन को मानता आया है और मानता रहेगा।

आज की परिस्थितियाँ भी हर जागरूक व्यक्ति से आध्यात्मिक पात्रता की माँग करती हैं और आध्यात्मिक पात्रता बिना मन में संवेदना जगाए नहीं मिलती और बिना अंतरंग का परिष्कार किए नहीं मिलती। अंतरंग का परिष्कार यदि हम कर पाते हैं तो हमारी उपस्थिति से मंदिर धन्य हो जाता है और भगवान निहाल हो जाते हैं। नहीं तो हमारे गंगा में डुबकी लगाने से हमारे मन का मैल निकले-न-निकले पर हम गंगा को मैला जरूर कर आते हैं। भारतीय संस्कृति व्यक्तित्व के परिष्कार और पात्रता के अभिवर्द्धन की संस्कृति है और आज उसी चिंतन को जन-जन तक पहुँचाना आज के समय की सर्वोपरि आवश्यकता कही जा सकती है। ❑

राजा किसी बात पर अपने मंत्री से क्रोधित हो गया तो उसने उसे राज्य की सबसे ऊँची मीनार पर नजरबंद करवा दिया। उसकी पत्नी बहुत चिंतित हुई कि अब उसके पति का क्या होगा? पर मंत्री पूर्णतया निश्चिंत था। उसने धीरे से अपनी पत्नी से कहा—"तुम बस, रेशम का पतला सूत मेरे पास पहुँचा देना, मैं मुक्त हो जाऊँगा।" यह जानकर पत्नी बहुत आश्चर्यचकित हुई और सोचने लगी कि भला सूत वहाँ तक कैसे पहुँचाया जाए और पहुँचा भी दें तो उससे पति कैसे आजाद होंगे?

इसी उधेड़बुन में वह अपने गुरु के पास पहुँची और उसने उन्हें सारी समस्या बताई। गुरु मुस्कराए और बोले—"पुत्री! तू एक भृंगी (कीड़ा) पकड़कर ला और उसके पैरों में सूत बाँध दे, फिर उसकी मूँछ के बालों पर शहद की बूँद टपकाकर उसे मीनार की चोटी की ओर मुँह करके छोड़ देना।" पत्नी को कुछ समझ में न आया, पर उसने गुरु की आज्ञा का पालन किया। भृंगी शहद की सुगंध का पीछा करते-करते मीनार की सबसे ऊँची मंजिल पर जा पहुँचा। सूत के वहाँ पहुँचने पर उसके सहारे डोरी और डोरी के सहारे रस्सा वहाँ पहुँचाया गया। रस्से का सहारा लेकर मंत्री वहाँ से मुक्त हो गया। साधारण-सी आशा के सहारे जब एक कीड़ा मीनार के बुर्ज तक जा पहुँचा तो मनुष्य तो ज्यादा विभूतियों का स्वामी है, यदि वह ठान ले तो जीवन में एक से बढ़कर एक ऊँचाइयों को प्राप्त कर सकता है।

जीवन-साधना का व्यावहारिक तत्त्वदर्शन

जीवन में उत्थान वरेण्य होते हुए भी सहज नहीं है; क्योंकि मन का स्वभाव नीचे की ओर लुढ़कने का है, प्रवाह के साथ बहने का है। आश्चर्य नहीं कि सामान्य जीवन असंयम, भोग-विलास और सुख की खोज में लिप्त रहता है तथा इसके लिए तमाम तरह के सरंजाम जुटाता रहता है। साधना के महापुरुषार्थ के बल पर ही इस बहिर्मुखी प्रवाह की धारा बदली जा सकती है व निम्नगामी ऊर्जा को ऊर्ध्वगामी दिशा दी जा सकती है।

यह कुछ ऐसा ही प्रयास है, जिसमें ढलान की ओर बहते जलस्रोत को पंप की सहायता से शिखर की ओर चढ़ाया जाता है या एक रॉकेट को गुरुत्वाकर्षण की शक्ति के विरुद्ध आकाश में विचरण के लिए एक सशक्त इन्जन के साथ जोड़ा जाता है। निस्संदेह इसी कारण आत्मसाधना को संसार का सबसे कठिन कार्य माना गया है और इसकी उपलब्धियों एवं फलश्रुतियों को भी सर्वोपरि स्थान दिया गया है।

श्रीमद्भगवद्गीता में पथ की दुरूहता का स्थान-स्थान पर विशद वर्णन मिलता है। धनुर्धर योद्धा अर्जुन के शब्दों में मन के वेग को रोकना, वायु वेग को रोकने से अधिक कठिन है। भगवान श्रीकृष्ण इसको साधने का मार्ग सुझाते हैं। भगवान बुद्ध के शब्दों में स्वयं को साधना परम शौर्य एवं वीरता का कार्य है। यदि कोई व्यक्ति हजार योद्धाओं को अकेले ही हजार बार हराता हो तथा दूसरा व्यक्ति मन को वश में कर लेता है, तो दूसरे को बड़ा विजेता माना जाएगा। जीवन-साधना का महत्त्व इन पंक्तियों में स्पष्ट रूप में समझ आता है, जिसके लिए प्रयास-पुरुषार्थ की अपेक्षा रहती है, लेकिन साधना के नाम पर भ्रम-भ्रांतियों का कुहासा भी कम नहीं है।

लोक चलन में तपस्वी-साधु के गणवेश में, किसी के मौन धारण कर मौनी बाबा बनने, किसी के फलाहार पर रहने या दुनिया से अलग-थलग किन्हीं गुफा-कंदराओं में रहने को तपस्या साधना से जोड़कर देखा जाता है। हठयोग की चित्र-विचित्र मुद्राओं व आसनों को भी इससे जोड़कर देखा जाता है।

ये प्रयोग स्वयं में गलत नहीं, लेकिन किन उद्देश्यों के साथ इनको संपन्न किया जा रहा है व इनसे जीवन का समग्र उत्कर्ष किस तरह सध रहा है, यह महत्त्वपूर्ण हो जाता है। यदि इन साधनात्मक कवायदों के बाद भी चित्त शुद्ध नहीं होता, अहंकार विगलित नहीं होता, चित्त शांत नहीं होता, मन में प्रसन्नता के प्रसून नहीं खिलते, अपने दैवी स्वरूप का बोध नहीं हो पाता, जीवन दिशाहीन एवं सार्थकता के बोध से हीन दिखता है, तो ऐसी तप-साधना पर प्रश्नचिह्न अवश्य लग जाते हैं।

इस रूप में साधना किसी गुफा में मौन धारण करने, भूखे-प्यासे रहने व दुनिया से अलग-थलग होकर किन्हीं हठयोग की क्रियाओं या धार्मिक कर्मकांड का पर्याय नहीं है, बल्कि यह तो जीवन के हर पक्ष को जानने, समझने, इसको समग्रता से जीने व साधने का नाम है। यह चेतना के परिष्कार एवं व्यक्तित्व के रूपांतरण के साथ जीवन-ऊर्जा को ऊर्ध्वगामी गति देने का नाम है।

यह जीवन को इसकी समग्र संभावनाओं के साथ जीने व इसी जीवन में मुक्ति लाभ जैसी मन:स्थिति को हस्तगत करने तथा जनमानस को एक श्रेष्ठ एवं दिव्य जीवन जीने की प्रेरणा देने का नाम है। यह जीवन के सत्य को धारण कर, धर्ममय जीवन जीने व लोकसेवा करते हुए आत्मविस्तार करने का राजमार्ग है। इस जीवन-साधना में मुख्य रूप से जो व्यवधान आते हैं, वे हैं—विषयभोग की लिप्सा, जो पूर्वसंस्कार के कारण उभरती रहती है। इसके साथ गलत संग-साथ होना भी एक मुख्य व्यवधान है, जो इस लिप्सा को प्रदीप्त करते हैं।

जीवन में आध्यात्मिक लक्ष्य का स्पष्ट न होना भी एक बड़ा व्यवधान रहता है, जिसके कारण साधना की सही समझ विकसित नहीं हो पाती। इसके साथ अपने कर्त्तव्यों के प्रति उदासीनता, साधनात्मक प्रयासों में नियमितता का अभाव,

आलस्य-प्रमाद व आरामतलबी मुख्य व्यवधान रहते हैं। इन सबके साथ जीवन में समर्थ गुरु के संरक्षण एवं मार्गदर्शन का अभाव भी एक बड़ा कारक रहता है।

साधना के इन व्यवधानों को समझते हुए अपने साधनात्मक पुरुषार्थ को धार दी जा सकती है, जिसके अंतर्गत स्वाध्याय के साथ गहन आत्मविश्लेषण करते हुए आध्यात्मिक लक्ष्य को स्पष्ट किया जाता है। श्रेष्ठ लोगों के संग-साथ व सात्त्विक वातावरण में ध्यान साधना के अभ्यास के साथ आध्यात्मिक धारणा को सुदृढ़ किया जाता है। इसके लिए एकांतवास, मौन, उपवास जैसे उपायों का विवेकसंगत प्रयोग सहायक रहता है। साधना की प्रारंभिक अवस्था में सामाजिक-सांसारिक जीवन के साथ इनका अनुपान साधक को विशेष बल देता है।

नवरात्रों में नौ दिन के साधना-अनुष्ठान को विधिवत् तपश्चर्या के साथ संपन्न किया जा सकता है। जटिल संस्कारों के निराकरण के लिए ऐसा तपप्रधान प्रबल पुरुषार्थ अभीष्ट रहता है। इसके साथ अपने स्वधर्म के प्रति सजगता एवं अपने कर्त्तव्यों के प्रति निष्ठा का भाव व्यावहारिक रूप में साधना को ठोस आधार देते हैं। अपने कर्त्तव्य के प्रति उदासीनता व कामचोरी को किसी भी रूप में साधना के साथ नहीं जोड़ा जा सकता। इनके साथ निर्धारित आध्यात्मिक उपायों का नियमित अभ्यास सहायक रहता है। इसके साथ हर समय व्यस्त रहना, मन को सृजनात्मक कार्यों में लगाए रहना एक संतुलित एवं प्रसन्न भावभूमि का निर्माण करते हैं। गुरु के बताए मार्ग पर निष्ठा एवं उनकी आज्ञा का पालन निस्संदेह रूप में साधना के सबल आधार रहते हैं। परमपूज्य गुरुदेव के बताए साधना-सूत्रों को हृदयंगम करते हुए समग्र साधना के साथ जीवन के बाह्याभ्यंतर मोर्चों को साधा जा सकता है।

इसके लिए युगऋषि ने उपासना, साधना, आराधना की जो त्रिवेणी बताई है, इसमें नियमित रूप में डुबकी लगाते हुए जीवन को सच्चिंतन, सत्कर्म एवं सद्भावनाओं से ओत-प्रोत रखा जा सकता है। जीवन में संयम, स्वाध्याय, सेवा और साधना को उचित स्थान देते हुए, जीवन को समग्र उत्कर्ष के मार्ग पर आरूढ़ किया जा सकता है। ❑

भगवान बुद्ध से उनके एक शिष्य ने प्रार्थना की—''प्रभु! मुझे ऐसे स्थान पर जाने की आज्ञा प्रदान करें, जहाँ के लोग स्वभाव से क्रूर हों।'' भगवान बुद्ध ने परीक्षा लेने के उद्देश्य से उससे कहा—''वत्स! वे लोग तुम्हारे साथ दुर्व्यवहार करेंगे, तुम्हें अपशब्द कहेंगे।'' शिष्य बोला—''भगवन्! दुर्व्यवहार सहन करने से व्यक्तित्व परिष्कृत होता है, मैं उनका उपकार मानूँगा।'' भगवान बुद्ध ने पुनः प्रश्न किया—''और यदि उन्होंने तुम्हारे ऊपर प्रहार कर दिया तब ?'' शिष्य ने उत्तर दिया—''यह तो और भी अच्छा होगा भगवन्! मेरे अशुभ कर्मों का शमन स्वतः ही हो जाएगा।''

भगवान बुद्ध आगे बोले—''परंतु यदि उनके प्रहारों से तुम अपने प्राण गँवा बैठे तो ?'' शिष्य भगवान बुद्ध के चरणों में गिरकर विनीत स्वर में बोला—''प्रभु! यह तो उनकी असीम अनुकंपा होगी। शरीर का मोह ही व्यर्थ है। मैं समझूँगा कि परमात्मा की यही इच्छा थी।'' भगवान बुद्ध उसके सिर पर हाथ रखकर बोले—''पुत्र! तुम धन्य हो। तुम ही वास्तव में प्रव्रज्या के अधिकारी हो; क्योंकि तुम्हारा मन सभी प्रकार के संघर्षों का सामना करने के लिए तैयार हो चुका है। सच्चे लोकसेवी की पहचान सहनशीलता से ही होती है।''

बढ़ चलें आत्मसाधना के पथ पर

बैजनाथपुर गाँव में संत वैभवदास के सप्तदिवसीय सत्संग का आज आखिरी दिवस था। सत्संग का आखिरी दिन सत्संग में पधारे साधकों व जिज्ञासुओं की आध्यात्मिक जिज्ञासाओं के समाधान के लिए निर्धारित था। जब आज सत्संग में प्रश्नोत्तर का कार्यक्रम प्रारंभ हुआ तब एक साधक ने प्रश्न किया—''महात्मन्! आप कहते हैं कि सांसारिक सुख अंततः दुःखदायी ही होते हैं, इसलिए इनके आकर्षण में मत पड़ो, पर इनके आकर्षण से कैसे बचें?''

संत वैभवदास बोले—''वत्स! आत्मकल्याण की आकांक्षा रखने वाले हर साधक को यह भली भाँति समझ लेना चाहिए कि भौतिक सुख क्षणिक है। भौतिक विषयभोगों को भोगने के बाद भी इंद्रियाँ अतृप्त ही रहती हैं। भोगों की इच्छा जितनी भी बार पूरी की जाए, वह अधूरी ही रहती है। वैसे ही जैसे अग्नि में घी की आहुतियाँ जितनी बार दी जाएँ, अग्नि उतनी ही अधिक और धधकती जाती है। वह अग्नि बुझने का नाम ही नहीं लेती।''

महात्मन् आगे बोले—''भौतिक विषयभोगों से प्राप्त सुख की सीमा है एवं उस सुख का प्रभाव तात्कालिक व क्षणिक ही होता है। इसलिए इंद्रियाँ पुनः उसे पाने को व्यग्र रहती हैं। सामान्य भौतिक दृष्टिसंपन्न व्यक्ति जीवन भर इंद्रियों के द्वारा वांछित व इच्छित भोगों की व्यवस्था बनाता रहता है, परंतु जिनके पास आत्मदृष्टि है, जो ज्ञानी हैं वे जानते हैं कि आत्मा से निस्सृत आनंद से ही हमें स्थायी रूप से तृप्ति मिल सकती है। इसलिए वे जीवन-निर्वाह मात्र के लिए अनासक्त भाव से भौतिक साधनों का सदुपयोग भर करते हैं और आत्मा से अलौकिक आनंद निस्सृत हो सके इस हेतु वे अपनी आत्मा में परमानंद के स्रोत परमात्मा का निरंतर ध्यान करते हैं।''

कुछ रुककर उन्होंने अपनी बात आगे बढ़ाई—''आत्मा में परमात्मा का निरंतर ध्यान करते-करते अंततः आत्मा से ईश्वरीय आनंद प्रस्फुटित हो उठता है। आनंद का, परमानंद का अजस्र स्रोत उसके अंदर फूट पड़ता है।''

महात्मन् ने आगे कहा—''तब आत्मदृष्टिसंपन्न हो जाने के कारण उसे यह भली भाँति ज्ञात हो जाता है कि लुभावने और सुंदर दिखने वाले भौतिक विषयभोगों से मिलने वाले सुख क्षणिक होते हैं और अंततः ये हमें दुःख देने वाले, आसक्त करने वाले एवं कर्मबंधन में बाँधने वाले होते हैं। सामान्य जन लुभावने व आकर्षक दिखने वाले विषयभोगों के दुष्परिणाम को नहीं समझ पाने के कारण उनमें फँसकर, उलझकर रह जाते हैं। वे दुःख और बंधन में पड़ जाते हैं।''

उदाहरणस्वरूप वे कहने लगे—''राजकुमार सिद्धार्थ को संसार की सभी सुख-सुविधाएँ उपलब्ध थीं। अपनी युवावस्था में उन्होंने उन सुख-सुविधाओं का उपयोग भी किया, पर उनकी दृष्टि भौतिक विषयभोगों से मिलने वाले क्षणिक व तात्कालिक सुखों से हटकर उन भोगों से मिलने वाले दुष्परिणाम की ओर गई। इसलिए अंततः उन्होंने त्याग व तपस्या का मार्ग चुना। बरसों तक तप-साधना की और अंततः आत्मबोध के रूप में अपने लिए शाश्वत सुख व परमानंद का अजस्र स्रोत अपने अंदर ही ढूँढ़ लिया।''

उन्होंने आगे कहा—''अस्तु मित्रो! हमें भोगों के दुष्परिणाम व उनसे मिलने वाले क्षणिक सुख पर सतत विचार करना चाहिए व शाश्वत सुख की प्राप्ति के लिए आत्मसाधना के पथ पर चल पड़ना चाहिए।'' तभी एक अन्य साधक ने प्रश्न किया—''महात्मन्! भौतिक सुख-साधनों के त्याग एवं तप-साधना के पश्चात भी यदि जीवन के अंत तक हमें आध्यात्मिक अनुभूति, परमानंद की अनुभूति न हो पाई तब क्या होगा? तब तो 'माया मिली न राम' जैसी बात हो जाएगी।''

इस प्रश्न को सुनकर संत वैभवदास मुस्कराए और बोले—''वत्स! जैसे ऊष्मा मिलते ही बरफ का पिघलना सुनिश्चित है, वैसे ही सही माने में सही दिशा में पूर्ण श्रद्धा-विश्वास के साथ आत्मसाधना की गई तो परमानंद के रूप में उसका सुंदर परिणाम प्राप्त होना अवश्यंभावी है।''

अपनी बात स्पष्ट करते हुए वे बोले—''आत्मसाधना के पथ पर चलकर ही अब तक अगणित साधकों ने आत्मबोध की प्राप्त की है, परमानंद की प्राप्ति की है। अश्रद्धा,

अविश्वास, असंयम, अधैर्य, संदेह एवं अनियमित रूप से की गई साधना ही असफल होती है। श्रद्धा, विश्वास, संयम, धैर्य संदेहरहित व नियमित रूप से दीर्घकाल यानी आत्मबोध की प्राप्ति होने तक की गई साधना ही अंतत: सफल होती है। इसमें कोई संदेह नहीं, पर हाँ! साधना करते-करते यदि इस क्षणभंगुर नश्वर भौतिक शरीर का अंत हो जाए तब भी साधकों को निराश होने की आवश्यकता नहीं। आत्मा तो अजर, अमर, अविनाशी है।''

उन्होंने आगे कहा—''साधक के द्वारा की गई साधना का संस्कार भी आत्मा स्वयं में संव्याप्त कर लेती है और पुन: नए शरीर में आ जाने पर साधक वहाँ से आगे की यात्रा, आगे की साधना पूर्ण कर पाता है। अस्तु उसके द्वारा पूर्व में की गई साधनाएँ निष्फल नहीं होतीं, बल्कि उसे अगले जन्म में उससे आगे की साधना पूर्ण करने में सहयोगी बनती हैं। वे कह रहे थे कि अपने पूर्वजन्म के साधनात्मक संस्कारों के द्वारा कई लोग बचपन से ही त्याग और वैराग्य की भावदशा में होते हैं। बचपन से ही वे भगवद्उपासना, भजन, जप एवं ध्यान में डूबने लगते हैं।''

अब सत्संग समापन की ओर जा रहा था कि तभी एक अन्य साधक ने प्रश्न किया—''महात्मन्! ऐसा कहा जाता है कि साधकों को परदोषदर्शन नहीं करना चाहिए। ऐसा क्यों है और इससे कैसे बचा जा सकता है?'' इस पर संत वैभवदास बोले—''वत्स! तुमने बड़ा ही सारगर्भित प्रश्न किया है। परदोषदर्शन से, दूसरों की बुराई करते रहने से हम दूसरों के पाप का चिंतन करते रहते हैं। दूसरों के पाप का चिंतन करते रहने से हमारा चित्त एवं मन मलिन होने लगते हैं, जिससे चित्त साधना में नहीं लग पाता।''

वे बोले—''इसके साथ ही हम पाप चिंतन करते-करते स्वयं भी उस रास्ते पर चल पड़ते हैं; क्योंकि जो व्यक्ति जैसा सोचता है, वह वैसा ही करता है और वैसा ही बन जाता है। इसलिए आध्यात्मिक जीवन एवं आत्मकल्याण के आकांक्षी साधकों को पाप चिंतन से बचना चाहिए एवं सतत सेवा, स्वाध्याय, भगवद्स्मरण, ध्यान करना चाहिए जिससे चित्त धुलता जाता है, परिष्कृत होता जाता है और चित्त परदोषदर्शन के प्रति अनाकर्षित व उदासीन होता जाता है।'' इतना कहने के साथ ही संत वैभवदास का सत्संग समाप्त हुआ। वहाँ उपस्थित साधकों, भक्तों, जिज्ञासुओं ने सत्संग में पाए अमृत को अपने हृदय में सहेजकर रख लिया व आत्मसाधना के पथ पर चल पड़े। ❑

मन की एकाग्रता का अर्थ है—विचारों की एकाग्रता। विचार व्यर्थ की चीज नहीं हैं। बहुत से लोग इस बात की चिंता नहीं करते कि उनके मन-मस्तिष्क में किस प्रकार के विचार आते-जाते रहते हैं। गंदे और निरुपयोगी विचार आने पर भी वे उनमें तृण की तरह बहते रहते हैं। वे नहीं समझ पाते हैं कि इससे उन्हें क्या और कितनी हानि होती है। विचार एक अमोघ शक्ति हैं। वे मनुष्य के संपूर्ण जीवन पर अपना स्थायी प्रभाव डालते हैं। अपने अनुरूप उसे हानि-लाभ की ओर ले जाया करते हैं। जिनका मन-मस्तिष्क उत्साह और आशापूर्ण विचारधारा से परिचित रहता है, जिनके विचार ऊँचे और आदर्श होते हैं, जो सदैव आगे बढ़ने और ऊँचे उठने और जीवन में कोई बड़ा काम करने की बात ही सोचते रहते हैं, निश्चय ही वे एक दिन अपने उद्देश्य में सफल हो जाते हैं।

—परमपूज्य गुरुदेव

पर्व विशेष (गीता जयंती)

श्रीमद्भगवद्गीता का शाश्वत संदेश

श्रीमद्भगवद्गीता, भगवान श्रीकृष्ण के मुख से निस्सृत वह अमर संदेश है, जिसको सुनकर कुरुक्षेत्र के रणक्षेत्र के मध्य मोहग्रस्त एवं किंकर्त्तव्यविमूढ़ अर्जुन अवसाद से उबरकर धर्मयुद्ध के लिए तैयार हो गए थे। ठीक इसी तरह गीता का संदेश आज भी उतना ही प्रासंगिक है, जब प्रतिदिन अनगिनत अर्जुन जीवन के रणक्षेत्र की चुनौतियों से पलायन कर हताशा-निराशा भरा कुंठित जीवन जीने के लिए अभिशप्त हैं। वास्तव में श्रीमद्भगवद्गीता में भारतीय धर्म-अध्यात्म का सार समाहित है।

भारत ही नहीं विश्वभर के विचारक एवं मनीषी इसके शाश्वत संदेश एवं सार्वभौम स्वरूप से अभिभूत रहे हैं। प्रस्तुत है श्रीमद्भगवद्गीता में निहित कालजयी शिक्षा-संदेश जो आज भी इसे प्रासंगिक बनाते हैं—

श्रीमद्भगवद्गीता में विषाद भी योग बन जाता है। सामान्यत: जीवन के दु:ख-संताप व चुनौतियों के बीच व्यक्ति टूट-बिखर जाता है, लेकिन गीता का ज्ञान यदि साथ है तो व्यक्ति उसे जीवन के उत्कर्ष की सीढ़ी बना देता है। जीवन के दु:ख व ताप यहाँ तप और योग का माध्यम बन जाते हैं और चुनौतियाँ जीवन में प्रगति का अवसर। गीता के पहले अध्याय विषादयोग में यही सत्य उजागर होता है। होशोहवास में जीवन के ऐसे पल आत्मजागरण, आत्मबोध के सुअवसर साबित होते हैं।

वास्तव में व्यक्ति स्वयं को शरीर-मन तक सीमित अस्तित्व मानकर एक बँधा हुआ जीवन जीने के लिए अभिशप्त होता है। अपने अजर-अमर-अविनाशी अस्तित्व का हल्का-सा भी बोध जीवन की अनंत संभावनाओं के द्वार खोल देता है। मन की सीमाएँ असीम हो जाती हैं, जीवन के संघर्ष बौने प्रतीत होते हैं और उत्कर्ष का साधन बन जाते हैं। गीता का दूसरा अध्याय कुछ ऐसा ही संदेश देता है। श्रीमद्भगवद्गीता स्वधर्म का बोध भी दे जाती है। जितना व्यक्ति स्वयं को जानता है, उतना ही जीवन का लक्ष्य स्पष्ट हो चलता है, स्वधर्म का बोध होता है। गीता में स्वधर्म को बहुत महत्त्व दिया गया है।

स्वधर्म में मरना भी बेहतर बताया गया है। स्वधर्म के साथ जीवन एक सृजन पर्व बन जाता है, जिसको पूरा करने में व्यक्ति इतना मस्त-मग्न हो जाता है कि दूसरों की वैभव-संपदा तथा सांसारिक चकाचौंध उसके लिए अधिक माने नहीं रखते। इसके साथ कर्त्तव्यनिष्ठा जीवन का अंग बन जाती है। अपने कर्त्तव्य कर्म के प्रति एकाग्रता का विकास होता है। कर्म के फल का ध्यान रहता है, लेकिन चिंता नहीं रहती; क्योंकि चिंता मन की एकाग्रता-स्थिरता को भंग करती है तथा कार्यकुशलता में बाधा बनती है। ऐसे में एकाग्रचित्त से किया कर्म समय पर फलित होता है। गीता में वर्णित बिना फल की चिंता के कर्म का मर्म तब धीरे-धीरे समझ आता है।

श्रीमद्भगवद्गीता जीवन में स्थितप्रज्ञता के आदर्श का प्रतिपादन करती है, जो सकल द्वंद्वों से ऊपर उठकर जीने की राह दिखाती है। जीवन में सुख की जितनी इच्छा रहेगी, दु:ख का अनुभव उसी अनुपात में होगा। जितना कहीं राग-आसक्ति रहेगी, उतना ही उसके छिन जाने का भय रहेगा। इससे पार निकलने के लिए श्रीमद्भगवद्गीता दोनों के बीच समभाव रखकर जीने की शिक्षा देती है, जिससे कि जीवन में शांति-स्थिरता व निर्द्वंद्वता का भाव बना रहे। श्रीमद्भगवद्गीता दैनिक जीवन में मध्यमार्ग के अनुसरण पर बल देती है। आहार-विहार से लेकर विचार-व्यवहार तक अति से बचने की सलाह देती है और एक संयत जीवनशैली का प्रतिपादन करती है।

अतिवादी के लिए गीताकार के अनुसार योग, अध्यात्म और मन की शांति दुष्कर बताई गई है। तन-मन का संतुलन जीवन की सुख-शांति के लिए अभीष्ट बताया गया है। इंद्रियनिग्रह के साथ मन को मित्र बनाने का संदेश श्रीमद्भगवद्गीता की एक अन्य विशेषता है, जो मानवीय प्रकृति की मनोवैज्ञानिक गहराइयों को समझते हुए व्यक्ति का मार्गदर्शन करती है। मन की स्थिरता को सुनिश्चित करने के लिए इंद्रियों के स्तर पर निग्रह का सुझाव देती है।

नियंत्रित मन को सबसे बड़ा मित्र और अनियंत्रित मन को सबसे बड़ा शत्रु करार देती है।

गीता मन को साधने के लिए अभ्यासयोग का सुझाव देती है। यह कर्मकौशल के साथ निष्काम कर्म का प्रतिपादन करते हुए जीवन के संतुलन-समता व कर्म कौशल के रूप में योग को परिभाषित करती है। साथ ही बिना किसी अधिक आशा-अपेक्षा के कर्म का प्रतिपादन करती है; क्योंकि अनावश्यक आशा-अपेक्षाएँ प्रायः अपेक्षित परिणाम न मिलने पर निराशा-उद्वेग का ही कारण बनती हैं। साथ ही निष्काम कर्म से चित्त शुद्ध होता है, जिसका भाव-परिष्कार से सीधा संबंध है।

कर्मयोग पर महत्त्व देते हुए भी गीता का बल भक्ति पर है, क्योंकि विराट के प्रति समर्पण के साथ ही कर्मफल का त्याग सरल-संभव बनता है और आत्मचिंतन-मनन के साथ आत्मतत्त्व की गहराइयों में योगसाधक उतरता है। इसी के साथ निष्काम कर्म का महत्त्व समझ आता है। क्रमशः विराट से जुड़ने का भाव परिपक्व होता है और भक्तियोग के साथ यह भाव पूर्णता की ओर आगे बढ़ता है। पापी-से-पापी के लिए भी श्रीमद्भगवद्गीता आशा की किरण लेकर आती है।

इसके अनुसार शुभकर्म के फल कभी निष्फल नहीं जाते और थोड़ा-सा भी पुण्य महान फलदायी माना जाता है। ईश्वर का अल्प-सा भी सुमिरन-भजन अपना प्रभाव दिखाता है।

यदि अस्तित्व के किसी कोने में ईश्वर के प्रति श्रद्धा-निष्ठा का अंकुरण हो चला तो समझो जीवन के परम सौभाग्य का उदय हो चला। गीताकार के अनुसार, ऐसे में पापी से भी पापी के उद्धार का मार्ग खुल जाता है। ईश्वरभक्त कभी नष्ट नहीं होता। जहाँ अर्जुन हैं, वहीं श्रीकृष्ण हैं तथा वहीं विजयश्री है।

श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार, जहाँ एक शिष्य-साधक की श्रद्धा-अभीप्सा जाग्रत है, वहाँ भगवान श्रीकृष्ण की उपस्थिति-मार्गदर्शन उपलब्ध है और जहाँ ईश्वरीय कृपा साथ में है, वहाँ विजयश्री सुनिश्चित है।

ऐसे में जीवन का रणक्षेत्र पलायन के बजाय धर्मयुद्ध का क्षेत्र बन जाता है और चुनौतियाँ उत्थान का अवसर तथा जीवन सृजन व आनंद का उत्सव बन जाता है। ❑

****

तुर्की और ईरान के मध्य युद्ध हुआ। युद्ध में तुर्की की सेना ने ईरान के सूफी संत फरीदुद्दीन को पकड़ लिया और उन्हें कारावास में डाल दिया। इस समाचार को सुनकर ईरान की जनता दुःखी हो गई और अपना क्षोभ व्यक्त करने जनसमूह ईरान के शाह से मिलने पहुँचा। उनकी फरियाद सुनकर ईरान के शाह ने तुर्की के सुल्तान को प्रस्ताव भेजा कि वे सारा राज्य ले लें, पर संत को छोड़ दें।

तुर्की का सुल्तान यह प्रस्ताव सुनकर घोर आश्चर्य में पड़ गया और उसने दूत के माध्यम से प्रश्न कराया कि जिस राज्य को वे लड़कर युद्ध में न जीत सके, उसे वे एक आदमी के बदले क्यों देने को तैयार हैं? ईरान के शाह ने कहा—"राज्य आते-जाते रहते हैं, पर संत अमर हैं। संत को खोकर मिला राज्य मूल्यहीन है, पर संत बहुमूल्य हैं।" यह सुनकर तुर्की के सुल्तान की आँखें खुल गईं। वह जान गया कि जिस देश में संतों का इतना आदर है, उसे जीत पाना संभव नहीं। उसने संत को आदरपूर्वक छोड़कर ईरान से संधि कर ली।

****

नारी की गौरव-गरिमा पुनः प्रतिष्ठित हो

भारतीय संस्कृति में नारी का स्थान सदैव गौरवपूर्ण रहा है। जब तक यह भाव जीवंत रहा, संस्कृति व समाज का ताना-बाना मजबूत रहा, देश विश्वगुरु से लेकर सोने की चिड़िया के नाम से विभूषित रहा, लेकिन विदेशी आक्रांताओं के क्रूर व्यवहार एवं दमनचक्र तथा आंतरिक दुर्बलता के बीच नारी-गरिमा का दौर गहरे विषाद से गुजरने के लिए विवश हुआ, लेकिन लंबे अंधकार युग के बाद कालचक्र पुनः नारी के वर्चस्व के जागरण व प्रतिष्ठापना की ओर बढ़ रहा है।

हालाँकि यह अभी तमाम तरह की चुनौतियों के बीच संक्रमण काल से गुजर रहा है, लेकिन यह अपनी उस भवितव्यता की ओर बढ़ रहा है, जहाँ युगऋषि ने इक्कीसवीं सदी को नारी सदी उद्घोषित किया है। वेदों के अनुसार— नारी विधाता की सर्वोत्तम परिकल्पना है और इसकी सृजन-क्षमता के कारण उसे ब्रह्मा की संज्ञा दी गई है।

ऋग्वेद में कहा गया है—"हे विदुषी! तुझ देवी पर सब जीवन आश्रित है; क्योंकि तू सरस्वतीरूपा है।" यजुर्वेद में नारी को संबोधित करते हुए कहा गया है—"हे स्त्री! तू स्तुतियोग्य, उत्तमवाणीयुक्ता, रमणीया, पूजनीया, कमनीया, चंद्र के समान आह्लादकारिणी, श्रेष्ठ शील से प्रकाशमान अर्थात ज्योति के समान अज्ञानांधकार को अपने दिव्य गुणों के प्रकाश से दूर करने वाली, दीनता एवं हीनता के भावों से रहित, परंपरा से पूर्ण, विविध गुणों से प्रसिद्ध तथा विविध विद्याओं में प्रवीण है। साथ ही नारी को अधन्ये अर्थात ताड़ना न करने योग्य एवं महि अर्थात पूजनीय कहा गया है।"

अथर्ववेद की ऋचाओं में स्त्री को शुद्ध, पवित्र एवं पूजनीया कहा गया है। उसे सुषमा अर्थात अच्छे गुणों की ओर प्रेरित करने वाली कहा गया है और उसे अमृतरसदायिनी की संज्ञा दी गई है। ऋग्वेद में नववधू को परिवार के समस्त सदस्यों के बीच साम्राज्ञी जैसे शब्दों से अलंकृत किया गया है। पत्नी को पतिगृह में सम्मानपूर्वक स्थान दिया जाता था—हे वधू! अपने सुकर्मों से तुम सास-ससुर, ननद, देवर आदि को वश में रखने वाली साम्राज्ञी होओ। ऋग्वेद के अनुसार गृहस्थ बिना पत्नी के अकेला यज्ञ करने का अधिकारी नहीं है। अतः नारी पति की सहधर्मिणी, सहचरी एवं जीवनसंगिनी है।

कोई भी शुभ कार्य या अनुष्ठान बिना स्त्री के पूर्ण नहीं समझा जाता। यज्ञ में उसकी उपस्थिति अनिवार्य मानी जाती थी। इसीलिए अश्वमेध यज्ञ के अवसर पर भगवान राम को सीता माता की स्वर्ण मूर्ति अपने पास रखवानी पड़ी थी। वस्तुतः भारतीय संस्कृति में नारी प्रकृति की अनुपम भेंट, सद्गुणों से सुसज्जित ईश्वर की रचना है। अतः नारी को पुरुष के बराबर नहीं, बल्कि उससे ऊँचा स्थान दिया गया है।

परमात्मा की आराधना में सर्वप्रथम स्थान माता को ही दिया गया है, जैसे—**त्वमेव माता च पिता त्वमेव...**। तैत्तिरीय उपनिषद् में भी माता-पिता की देवता के समान पूजा की बात कही गई है, जिसमें माता का स्थान पहला है—**मातृ देवो भव, पितृ देवो भव...**।

महाभारत के अनुशासन पर्व के अनुसार—माता के समान दूसरा कोई गुरु नहीं है। शतपथ ब्राह्मण में माता को पहले गुरु के रूप में स्वीकार किया गया है। वशिष्ठ धर्मसूत्र के अनुसार—उपाध्याय, आचार्य से दश गुना प्रतिष्ठा के योग्य होता है, आचार्य से पिता सौ गुना महान होता है, परंतु पिता से माता एक हजार गुना अधिक श्रेष्ठ होती है।

चाणक्य सूत्र भी इसकी पुष्टि करता है—**गुरुणां माता गरीयसी** अर्थात सब गुरुओं में माता का स्थान सर्वोच्च है। माता की इतनी प्रतिष्ठा के कारण ही अथर्ववेद में पुत्र को उपदेश दिया गया है कि वह माता के संपर्क से प्रीतियुक्त मन वाला बने। मनुस्मृति के अनुसार—पुत्र को माता-पिता, दोनों की आज्ञाओं में से माता की आज्ञा को सहस्र गुना अधिक गौरव देना चाहिए।

आदि शंकराचार्य ने अपनी श्रद्धेय जन्मदायिनी जननी को श्रद्धांजलि देते समय जो कहा था, वह बहुत मार्मिक है एवं पठनीय है। उनके शब्दों में—प्रसूति समय की अनिवार्य

शूल व्यथा को रहने दें, तो भी मेरे द्वारा दुग्धपान से माता के शरीर शोषण, वर्षों तक मेरे द्वारा मल-मूत्र के कारण मलयुक्त माता का बिस्तर, माता द्वारा गर्भभार का वहन एवं उसका पोषण आदि अनेक ऋण मुझ पर हैं। जिन माता के इनमें से एक ऋण में से भी उऋण होने के लिए यह पुत्र असमर्थ है, उस माता को मेरा नमस्कार।

आदि महाकाव्य रामायण के रचयिता महाकवि वाल्मीकि के शब्दों में नारीत्व की चरम परिणति मातृत्व के रूप में होती है। मनुष्य के चरित्र निर्माण की सूत्रधारिणी माता है, पिता नहीं। महाकाव्य महाभारत के अनुशासन पर्व में भीष्म पितामह स्त्रियों के प्रति उच्च आदर भाव को प्रदर्शित करते हुए कहते हैं—''स्त्री को सदा पूज्य मानकर स्नेह का व्यवहार करना आवश्यक है।''

जहाँ स्त्रियों का आदर-सत्कार होता है, वहाँ देवताओं का निवास होता है और उसकी अनुपस्थिति में सभी कार्य निष्फल हो जाते हैं। पत्नी के रूप में स्त्री पर महाभारत आदिपर्व के ये विचार पठनीय हैं—पत्नी अपने पति का आधा अंग मानी गई है। उसे संसार में सर्वश्रेष्ठ सखा, मित्र स्वीकार किया गया है। वह त्रिवर्ग—धर्म, अर्थ और काम की मूल घोषित की गई है।

दु:ख से पार जाने के लिए सहारा पत्नी ही है। पत्नी के साथ ही पति की विशेष रूप से शोभा और आनंद है। प्रिय बोलने वाली पत्नियाँ जनशून्य स्थान में मित्र का काम देती हैं। वे ही धार्मिक कार्यों में पिता के समान परामर्श देने वालीं और दु:खी व रोगी पुरुष की उसकी माता की तरह सेवा करने वाली होती हैं।

वन में भी यात्री को विश्राम अपनी पत्नी से ही मिलता है। जिस पुरुष की पत्नी विद्यमान है, ऐसे पुरुष का प्राय: सब विश्वास करते हैं। अतएव पत्नी एक बहुत बड़ा सहारा है। इसी तरह शांतिपर्व में कहा गया है—पुरुष की प्रधान संपत्ति उसकी पत्नी ही है। जो पुरुष रोग से पीड़ित हो और बहुत दिनों से किसी विपत्ति में फँसा हो, उस पीड़ित मनुष्य के लिए भी स्त्री के समान दूसरी कोई औषधि नहीं है।

संसार में स्त्री के समान कोई बंधु नहीं है, स्त्री के समान कोई आश्रय नहीं है और स्त्री के समान धर्म संग्रह में सहायक भी दूसरा नहीं है। सौभाग्यवती कल्याणी स्त्रियाँ गृह को प्रकाशित करने वाली हैं। अत: वे पूजा के योग्य हैं। स्त्रियाँ गृहलक्ष्मी बताई गई हैं।

इस दृष्टि से वे विशेष रूप से रक्षा करने योग्य हैं। वे गृह का सौभाग्य एवं सौंदर्य होती हैं। अत: परिवार सौभाग्यशाली बने, उसके लिए स्त्रियों का आदर करना आवश्यक है। इस तरह स्पष्ट होता है कि प्राचीनकाल में नारी का स्थान न केवल अत्यधिक ऊँचा रहा है, बल्कि उसका सम्मान एवं सत्कार भी सर्वाधिक रहा है।

कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि नारी महिमा का इतना सर्वोत्कृष्ट विवरण विश्व में अन्यत्र दुर्लभ है। आश्चर्य नहीं कि उपनिषदों में सृष्टि की संपूर्ण रिक्तता की पूर्ति स्त्री से मानी गई है। नारियों के लिए प्रयुक्त इन विशेषणों से सुनिश्चित होता है कि प्राचीनकाल में स्त्रियों की स्थिति अत्यंत उन्नत एवं महत्त्वपूर्ण थी और वे उस युग में असीम आदर की पात्र थीं।

गार्गी, अपाला, घोषा, लोपामुद्रा, विश्ववारा, शाश्वती, सलभा जैसी विदुषी एवं ब्रह्मवादिनी नारियों की यह परंपरा मध्यकाल में मीमांसक मंडन मिश्र और आदि शंकराचार्य के बीच शास्त्रार्थ के दौरान अपने भव्यतम रूप में प्रकट होती है, जब मंडन मिश्र की पत्नी भारती शास्त्रार्थ की मध्यस्थता करती हैं और पति के हारने पर आदि शंकराचार्य को चुनौती देती हैं।

मध्यकालीन अंधयुग विदेशी आक्रांताओं के दमन चक्र व क्रूर व्यवहार का एक काला अध्याय है, जिसके बीच नारी-गरिमा को गहरा आघात पहुँचा, जिसमें राजपूत नारियों द्वारा इसलामी आक्रमणकारियों से अपने पतिव्रत धर्म तथा सतीत्व की रक्षा हेतु, प्रखर ज्वाला में आत्माहुति अर्थात जौहर तक का चलन चला था।

इसके साथ ही तमाम तरह की कुरीतियाँ भी पनपीं, जिन्होंने नारी की गरिमा को तिरोहित किया। इसके उपरांत अँगरेजी शिक्षा व अपसंस्कृति के प्रभाव में नारी के प्रति गौरवमयी भाव का और भी क्षरण हुआ। हालाँकि 20वीं सदी में पुन: नारी चेतना के जागरण का दौर प्रारंभ हुआ, जो 21वीं सदी में नए मुकाम की ओर अग्रसर है, लेकिन अभी भी बहुत कार्य शेष है।

आज पुन: आवश्यकता नारी की गरिमा को उस गौरवपूर्ण मुकाम तक पहुँचाने व प्रतिष्ठित करने की है, जहाँ देव संस्कृति की सनातन गौरव-गरिमा पुन: प्रकट होकर विश्व का मार्गदर्शन कर सके। इसके लिए यह भाव बोध आवश्यक है कि स्त्री समाज की आत्मा का वह मुख्य तंतु है, जिस पर समाज का नैतिक ढाँचा टिका हुआ है।

स्त्रियों के प्रति व्यवहार ही पुरुष के व्यवहार की सबसे बड़ी कसौटी है। स्त्री सिर्फ मिट्टी का पुतला नहीं, वह समस्त मानवीय सौंदर्य का आदि तथा अनंत स्रोत भी है। मनुष्य के सारे पुरुषार्थ उसके स्त्री के साथ के संबंधों में ही प्रतिफलित होते हैं।

स्त्री समाज का एक मुख्य स्वर है, संवेदना का आदिस्रोत। इसके प्रति पुरुष को सजग-संवेदनशील होने की आवश्यकता है। इसके लिए जहाँ नारियों को स्वयं शिक्षित-सुसंस्कृत होने का सचेष्ट प्रयास करना है, जिससे कि परिवार में श्रेष्ठ संस्कारों का बीजारोपण हो सके, तो वहीं पुरुषों का भी दायित्व बनता है कि वे नारी को सही दृष्टि से देखें, उसके प्रति अपने अंत:करण में आदर एवं श्रद्धा का भाव जगाएँ और उसके दैवी तत्त्व को जगाने में सहायक बनें। तभी मनुस्मृति की वह उक्ति चरितार्थ होगी, जिसमें कहा गया है—**यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः**। इसी के साथ नारी की गौरव-गरिमा अपनी दिगंतव्यापी आभा के साथ पुनः युग को आलोकित कर सकेगी। ❑

राजा अश्वघोष की ख्याति बहुत थी। उनके बारे में प्रसिद्ध था कि वे विद्वता को तुरंत पहचान लेते हैं और विद्वानों का यथोचित सम्मान भी करते हैं। उनकी ख्याति सुनकर काशी के दो पंडित उनके दरबार में पहुँचे। वहाँ पहुँचकर दोनों ने अहंकार से लिप्त भाषा में अपनी-अपनी प्रशंसा करनी प्रारंभ की। दोनों की आडंबरपूर्ण भाषा एवं मिथ्या अहंकार से राजा अश्वघोष का मन बड़ा क्षुब्ध हुआ। उन्होंने दोनों की परीक्षा लेने की सोची।

राजा ने दोनों पंडितों को एकांत में एक-एक करके बुलाया और उनसे अपने साथी पंडित का परिचय पूछा। पहले पंडित ने दूसरे के बारे में बोला—"अरे! वो तो निरा गधा है। उसे तो शास्त्रों का जरा भी ज्ञान नहीं।" दूसरा पंडित बोला—"महाराज! मेरे साथी के बारे में आपको क्या बताऊँ? वो तो एक सिरफिरा बैल है।"

जब उन पंडितों के जाने का समय आया तो राजा ने एक को उपहार में भूसा और दूसरे को चारा दिया। यह देखकर दोनों क्रोध से आगबबूला हो गए और बोले—"ये क्या महाराज! हमने तो आपकी बड़ी प्रशंसा सुनी थी कि आप बड़े ज्ञानी व्यक्ति हैं, पर आपने यह हमारा कैसा अपमान किया है?"

राजा अश्वघोष बोले—"पंडित जी! इसमें मेरा कोई दोष नहीं। यह उपहार तो उसी परिचय का परिणाम है, जो आप विद्वत् जनों ने एकदूसरे का दिया।" महाराज के कथन का अर्थ दोनों की समझ में आ चुका था। दोनों ने भविष्य में ऐसी गलती न दोहराने का वचन दिया और ज्ञान के मूल भाव को जीवन में उतारने का संकल्प लिया, तब राजा ने दोनों को ससम्मान विदा किया।

ध्यान बिना नहीं ज्ञान

ध्यान की परम और गहन अवस्था में ही सिद्धार्थ गौतम बुद्ध बने थे। उन्हें बुद्धत्व की प्राप्ति हुई थी। ध्यान की अवस्था में ही उन्हें बोध हुआ था अर्थात ज्ञान प्राप्त हुआ था, पर बुद्ध के जीवन में ध्यान उन्हें बुद्धत्व की प्राप्ति होने तक ही सीमित न था। ध्यान तो मानो उनके रोम-रोम से झरता था, बहता था। जीवन के हर पल वे ध्यान में ही रहे। वे जब हँसते तो ऐसा लगता मानो स्वयं ध्यान ही हँस पड़ा हो और उनके अधरों पर मानो ध्यान ही मुस्कान बन अभिव्यक्त हो रहा हो।

वे जब बोलते तो ऐसा लगता मानो स्वयं ध्यान ही बोलने लगा हो। वे जब चलते तो ऐसा लगता मानो ध्यान ही चल रहा हो। उनकी वाणी से, दृष्टि से मानो हर वक्त ध्यान ही प्रस्फुटित व अभिव्यक्त होता था। उन्हें देखकर-सुनकर ऐसा लगता मानो ध्यान ने ही बुद्ध का रूप धारण कर लिया हो।

वर्षों की ध्यान-साधना उनके अंदर इस गहराई तक उतर आई थी कि बोधप्राप्ति के बाद भी वे पल भर के लिए भी कभी ध्यान से रहित हुए ही नहीं। इसलिए तो उनके सोने-जागने, हँसने-बोलने और चलने में भी ध्यान अभिव्यक्त हुआ करता था।

भगवान बुद्ध के मिलने वाले चित्रों में हम उन्हें प्राय: ध्यानमग्न अवस्थाओं में ही देखते हैं। कभी वे पर्वत के ऊपर काली अँधियारी रात में खुले में बैठकर ध्यान कर रहे हैं तो कभी वे बारिश की रिमझिम फुहारों में बैठकर भी ध्यानमग्न हैं। कभी वे खुले में नदी के तट पर ध्यानमग्न हैं तो कभी काले-काले बादलों से भरे आकाश के नीचे किसी शिला पर बैठे हुए ध्यानमग्न हैं। कभी वे सूर्य से बरस रही गरमी में गृध्रकूट पर्वत पर ध्यानस्थ हैं तो कभी कँपकँपाती ठंढ में भी जंगल में ऊँची-नीची जमीन पर पत्तों के आसन पर आसीन हो ध्यानस्थ हैं।

कभी वे किसी श्मशान वन में ध्यान करते हुए टहल रहे हैं तो कभी चारों ओर से दर्शनार्थियों से घिरे होकर भी ध्यानस्थ हैं। कभी-कभी तो ऐसा होता है कि जब कोई दर्शनार्थी उनसे मिलने विहार में आते थे तो आनंद उन्हें यह कहते थे कि भगवान! इस समय ध्यान में अवस्थित हैं। इस प्रकार के अनेकों प्रसंग बौद्ध धर्म के प्रमुख ग्रंथ 'त्रिपिटक' में हमें सहज ही देखने को मिलते हैं। एक लंबे समय तक जनसामान्य के बीच रहते-रहते अक्सर बुद्ध कुछ पल के लिए एकांत सेवन को, एकांतवास में चले जाते थे।

कई बार वे भिक्षुओं से कहते थे—"भिक्षुओ! मैं कुछ समय एकांतवास करना चाहता हूँ। एक भिक्षान्न लाने वाले को छोड़कर मेरे पास कोई दूसरा न आने पावे। बुद्ध के जीवन में ऐसे कई प्रसंग देखने को मिलते हैं। वर्षों तक ध्यान की गहन अवस्था में ही अंतत: बुद्ध को बुद्धत्व की प्राप्ति हुई थी, परम ज्ञान की प्राप्ति हुई थी। ध्यान कभी भी किसी को निष्क्रिय नहीं बनाता। तभी तो ज्ञान की प्राप्ति के बाद तथागत अहर्निश कर्मरत होकर सर्वत्र धर्म का, ज्ञान का प्रचार करते रहे।

जिस अंतिम रात को उन्होंने शरीर छोड़ा, उस दिन भी संध्याकाल से लेकर रात के अंतिम पहर तक वे लगातार भिन्न-भिन्न व्यक्तियों, शिष्यों और जनसमूह को उपदेश देते रहे। उनकी समस्याएँ सुनते रहे। उन्हें समाधान देते रहे।

तथागत का यह अनवरत कर्मयोग ध्यानाभ्यास से कभी रहित था ही नहीं। नाना प्रकार के लोगों से मिलते हुए, पैदल चलते हुए, धर्मोपदेश करते हुए भी तथागत सदा ध्यान से, समाधि से युक्त थे। तथागत कभी ध्यान से रिक्त हुए ही नहीं। इस विषय की चर्चा त्रिपिटक के प्रत्येक पृष्ठ पर हमें मिलती है। उनके मुख से निकले एक-एक शब्द उनकी सहज ध्यानावस्था के ही सूचक हैं।

सचमुच साधकों के लिए बुद्ध का यह ध्यानस्थस्वरूप संसार के सबसे दिव्य और महानतम उद्धरणों में से है और सच कहें तो ध्यान से दिव्य और महानतम अनुभव इस दुनिया में दूसरा है ही नहीं। उस दिव्य व महानतम ध्यान की अभिव्यक्ति ही शिल्पियों ने बुद्ध की मूर्तियों के द्वारा प्रस्तुत

की है, जो अद्वितीय है; क्योंकि बुद्ध के इस ध्यानस्वरूप को देखकर हमारा चित्त शांति में, ध्यान में डूबने लगता है, इंद्रियाँ शमित होने लगती हैं और आध्यात्मिक आनंद का अनुभव होने लगता है। वस्तुत: ध्यान ही तथागत के जीवन का सार है, निष्कर्ष है। उस ध्यान के सहारे उस ध्यान में होकर, डूबकर हम भी ध्यानस्थ हो सकते हैं, ज्ञानी हो सकते हैं। निर्वाणी हो सकते हैं। इसलिए तो बुद्ध ने ध्यान पर बहुत जोर दिया।

उन्होंने अपने शिष्यों को अक्सर ध्यान करने को प्रेरित किया। महात्मा गौतम बुद्ध अपने उपदेश के अंत में अक्सर अपने शिष्यों से कहा करते थे—"भिक्षुओ! यह सामने वृक्षों की छाया है, ये सूने घर हैं। यहाँ बैठकर ध्यान करो। पीछे मत पछताना। यही हमारा आदेश है।" महात्मा बुद्ध ने एक बार राहुल को भी यही उपदेश दिया—ध्यान करो और यह उपदेश पाते ही राहुल ने सोचा कौन आज भगवान का उपदेश सुनकर भिक्षाटन करने जाए और वह वहीं आसन लगाकर गरदन सीधी कर स्मृति को उपस्थित कर ध्यानमग्न हो गए।

भूख-प्यास को छोड़कर ध्यान के लिए ऐसी ही तत्परता बुद्ध के अनेक शिष्यों में पाई जाती थी, पर ध्यान के साथ-साथ उन्होंने शिष्यों को सम्यक वाक्, सम्यक कर्मांत, सम्यक आजीविका और सम्यक व्यायाम आदि शीलों (आचरणों) के पालन करते रहने को भी कहा। बुद्ध ने यह स्पष्ट किया कि सिर्फ सत्य वचनों का प्रयोग ही सम्यक वाक् नहीं हो सकता, बल्कि मन, वचन व कर्म से सत्य का पालन करना ही वास्तव में सम्यक वाक् है।

सम्यक वाक् के अंतर्गत कटुवचन का त्याग, परनिंदा का त्याग, मधुर व मितभाषी होना आवश्यक है। पर निर्वाण प्राप्त करने के लिए साधक को सिर्फ सम्यक वाक् का पालन करना ही पर्याप्त नहीं; क्योंकि बुद्ध का मानना था कि सत्यभाषी और प्रियभाषी होने के बावजूद भी व्यक्ति बुरे कर्मों को अपनाकर पथभ्रष्ट हो सकता है। अत: उन्होंने सम्यक कर्मांत के पालन का भी उपदेश दिया है। सम्यक कर्मांत का अर्थ बुरे कर्मों का परित्याग एवं शुभ कर्मों का पालन करना है।

भगवान बुद्ध के अनुसार बुरे कर्म तीन हैं—हिंसा, अस्तेय और इंद्रिय भोग। अस्तु साधक को मन, वचन एवं कर्म से अहिंसा का पालन करना चाहिए और अस्तेय अर्थात दूसरों की संपत्ति नहीं चुराना चाहिए और इंद्रिय संयम का पालन करना चाहिए। इन चीजों का पालन करना ही सम्यक कर्मांत है, पर सम्यक वाक् एवं सम्यक कर्मांत के साथ-साथ सम्यक आजीविका का पालन भी आवश्यक है।

सम्यक आजीविका का अर्थ है—ईमानदारी से जीविकोपार्जन करना। जीवन-निर्वाह के लिए बेईमानी का मार्ग नहीं अपनाना चाहिए। धोखा, रिश्वत, लूट, अत्याचार, बेईमानी आदि अशुभ उपायों से जीविका-निर्वाह करना महान पाप है। साथ ही ऐसे कर्म हमारे चित्त को दूषित एवं कलुषित भी करते हैं, जिससे साधक का साधना में और ध्यान में मन नहीं लगता।

एक और प्रमुख शील है—सम्यक व्यायाम। भगवान बुद्ध के अनुसार, मन में व्याप्त पुराने बुरे, अशुभ विचारों को बाहर निकालना, नए बुरे विचारों को मन में आने से रोकना, अच्छे भावों को मन में भरना और उन अच्छे भावों को मन में कायम रखने के लिए सतत क्रियाशील रहना ही सम्यक व्यायाम है। इस प्रकार सम्यक व्यायाम उन क्रियाओं को कहते हैं, जिनसे अशुभ मन:स्थिति का अंत होता है तथा शुभ मन:स्थिति का प्रादुर्भाव होता है।

सारी दुनिया का ज्ञान प्राप्त करके भी जो स्वयं को नहीं जानता, उसका सारा ज्ञान ही निरर्थक है।

अत: ध्यानयोग की साधना में रत साधक को ध्यान के साथ-साथ सम्यक वाक्, सम्यक कर्मांत, सम्यक आजीविका और सम्यक व्यायाम आदि शील (आचरण) का पालन भी करते रहना चाहिए। बुद्ध के अनुसार तभी साधक को अभीष्ट लक्ष्य की प्राप्ति होती है। ध्यान ही ज्ञान का, निर्वाण का और आनंद का साधन है, इसलिए हमें नित्य ध्यान करना चाहिए। बुद्ध के द्वारा दिखाया गया यह मार्ग बड़ा ही सहज है, सरल है और हर व्यक्ति के लिए खुला है। वह हर व्यक्ति जिसका लक्ष्य ज्ञान है, निर्वाण है, आनंद है वह इस मार्ग का, इस पथ का पथिक बन सकता है। ❑

रुद्राक्ष—औषधीय गुणों से भरपूर दिव्य वृक्ष

भारतीय संस्कृति के सांस्कृतिक प्रतीकों में रुद्राक्ष एक विशिष्ट स्थान रखता है, जो इसकी धार्मिक एवं आध्यात्मिक आस्था का अभिन्न हिस्सा रहा है। इसका मुख्य कारण है—रुद्र एवं अक्ष अर्थात भगवान शिव के आँसुओं के रूप में इसकी पहचान।

माना जाता है कि जब भगवान शिव से आशीर्वाद प्राप्त त्रिपुरासुर सृष्टि के लिए खतरा बन गया तो उसका संहार करने के लिए शिव ने रुद्र रूप धारण किया और तब उनकी आँखों से निकले आँसू धरती पर गिरे तथा उन्होंने रुद्राक्ष का रूप धारण किया। अत: इसे भगवान शंकर के प्रतीक के रूप में माना जाता है, जिसे माला से लेकर कलावा, कवच, मुकुट और न जाने कितने रूपों में धारण किया जाता है।

हिंदू धर्म में विशेष रूप से शिव व शक्ति-उपासना में इसका विशेष महत्त्व रहता है व इसकी माला से जप किया जाता है। इसका पौधा प्रमुखतया हिमालयी क्षेत्रों में 6000 से 9000 फीट की ऊँचाइयों में पाया जाता है। भारत सहित नेपाल के उच्च क्षेत्रों में यह बहुतायत में पाया जाता है। भारत में रुद्राक्ष उत्तराखंड, अरुणाचल प्रदेश, असम जैसे हिमालयी क्षेत्रों में पाया जाता है, इसके अतिरिक्त दक्षिण भारत के मैसूर, नीलगिरी और कर्नाटक में भी रुद्राक्ष के पौधे मिलते हैं।

भारत के बाहर इंडोनेशिया, नेपाल और मलयेशिया देश रुद्राक्ष के प्रमुख स्रोत हैं। नेपाल में पाया जाने वाला रुद्राक्ष आकार में अधिक बड़ा होता है, जबकि इंडोनेशिया व मलयेशिया का रुद्राक्ष छोटा होता है। रुद्राक्ष मूलत: शीतल जलवायु का पौधा है, जो ठंढी जलवायु में अधिक बढ़ता है। अधिक तापमान वाली जगह में इसे छायादार जगह में उगाया जाता है। यह एक सदाबहार पेड़ है, जो तीव्रता से विकसित होता है। इसके पौधे में 3-4 वर्षों बाद फल आना प्रारंभ हो जाते हैं। इसके साथ ही इसका पौधा हरा-भरा बहुत सुंदर लगता है, वसंत ऋतु में यह सफेद पुष्पों के साथ लदा हुआ, परिवेश की सौंदर्य राशि में वृद्धि करता है।

रुद्राक्ष के पेड़ का वैज्ञानिक नाम इलियोकार्पस गेनिट्रस है। यह औसतन 60 से 80 फीट ऊँचा होता है और 150 से 200 फीट की ऊँचाई तक बढ़ता देखा गया है। रुद्राक्ष की 300 से अधिक प्रजातियाँ हैं, जिनमें लगभग 35 प्रजातियाँ भारत में पाई जाती हैं। एक पूरी तरह से विकसित पेड़ वर्ष भर में लगभग 1000 से 2000 फल देता है।

मान्यता है कि प्राचीनकाल में 108 मुखी वाले रुद्राक्ष होते थे, किंतु आज इसमें एक से 21 रेखाएँ अर्थात मुख पाए जाते हैं। नेपाल में 27 मुखी रुद्राक्ष तक मिला है। रुद्राक्ष का मापन मिलीमीटर में होता है। इंडोनेशिया में मिलने वाला रुद्राक्ष जहाँ 5 से 25 मिमी के बीच होता है, तो वहीं नेपाल में मिलने वाला रुद्राक्ष 20 से 35 मिमी का होता है।

14 मुखी रुद्राक्ष को सबसे शक्तिशाली रुद्राक्ष माना जाता है; जबकि एकमुखी को सबसे विरल, पावन तथा श्रेष्ठ माना जाता है। इसे साक्षात् शिवस्वरूप माना जाता है। महाभागवत पुराण में कहा गया है कि जिस घर में एकमुखी रुद्राक्ष रहता है, उस घर में सदा माता लक्ष्मी वास करती हैं। 4, 5 और 6 मुखी रुद्राक्ष सबसे सामान्य हैं। पंचमुखी रुद्राक्ष जहाँ सबसे अधिक मिलते हैं व कम कीमत में उपलब्ध हो जाते हैं तो वहीं 1 मुखी, 14 मुखी व 21 मुखी रुद्राक्ष दुर्लभ रहते हैं तथा बेहद महँगे होते हैं।

इसका फल पकने पर नीले रंग का होता है, इसलिए यह ब्लूबेरीबीड्स भी कहलाता है। इसका सामान्य रंग जहाँ भूरा होता है तो वहीं यह सफेद, काले, पीले और लाल रंग में भी मिलता है। इसके फल प्रारंभ में हरी बेरियों की तरह दिखते हैं, जो समय के साथ नीला रंग ले लेते हैं। पका हुआ फल स्वत: ही धरती पर आकर गिर जाता है। फल के छिलके से अलग कर बीज को निकाला जाता है, जिसका आकार क्षेत्र व ऊँचाई द्वारा निर्धारित होता है।

हिमालय क्षेत्र में उगने वाले रुद्राक्ष को विशेष गुणकारी माना जाता है; क्योंकि हिमालय के शिखर में भगवान शिव

का वास माना जाता है। अत: हिमालयी क्षेत्र में उपजने वाले रुद्राक्ष में विशेष शक्तियाँ व चिकित्सकीय क्षमताएँ रहती हैं। इस तरह रुद्राक्ष अपनी दिव्यता के साथ औषधीय गुणों से भी भरपूर है। इसकी माला को धारण करने से भूतबाधा व नकारात्मक विचार दूर होते हैं। इसकी माला गले में धारण करने से रक्त का दबाव अर्थात उच्च रक्तचाप नियंत्रित होता है।

रुद्राक्ष से निकलने वाले तेल से दाद, एग्जिमा और मुहाँसों से राहत मिलती है, ब्रोंकियल अस्थमा में भी आराम मिलता है। दिल की बीमारी व घबराहट में रुद्राक्ष एक प्रशांतक औषधि का काम करता है। इसके पत्तों में एंटीबैक्टीरियल गुण पाए जाते हैं। इसीलिए इसके पत्तों का लेप घाव के उपचार में किया जाता रहा है।

आयुर्वेद में इसके औषधीय गुणों की चर्चा हुई है। इसके पत्तों से सरदरद, माइग्रेन, एपिलेप्सी तथा मानसिक रोगों का उपचार किया जाता है। फल के छिलके का उपयोग सरदी, फ्लू और बुखार में किया जाता है। साथ ही इसके पत्तों व छिलकों का उपयोग रक्त के शोधन में भी किया जाता है। आयुर्वेद के ग्रंथों के अनुसार—रुद्राक्ष शरीर को सशक्त करता है, रोगप्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाता है, नैसर्गिक उपचारात्मक शक्तियों को जाग्रत करता है और समग्र स्वास्थ्य में योगदान देता है।

इसके नकली रूप भी बाजार में उपलब्ध हैं, अत: विशेषज्ञों व जानकारों से परामर्श के उपरांत ही इसके आध्यात्मिक व औषधीय गुणों की परीक्षा की जानी चाहिए। ❑

अर्जेंटीना के एक प्रसिद्ध गोल्फर विन्सेन्जो ने एक खेल प्रतियोगिता में प्रथम स्थान प्राप्त किया। पुरस्कार जीतने के बाद वे अपनी कार पार्किंग से निकाल रहे थे कि एक महिला उनके पास आकर रोने लगी। पूछने पर उसने बताया कि उसके बच्चे को कैंसर है और उसी कारण उसको इतना दु:ख है। विन्सेन्जो का दिल यह सुनकर पसीज गया। उन्होंने तुरंत पुरस्कार में जीती सारी राशि उस महिला को हाथोंहाथ दे डाली।

कुछ दिनों बाद उस खेल प्रतियोगिता के आयोजकों से उनकी भेंट हुई तो उन्होंने सारा घटनाक्रम आयोजकों को कह सुनाया। सारी घटना सुनकर आयोजक बोले—''अरे आप तो लुट गए। वो महिला तो धोखेबाज है, कई लोगों को ऐसी ही कहानी बनाकर लूट चुकी है।''

इस पर विन्सेन्जो परेशान होने के स्थान पर बोले—''अरे! यह तो बड़ी खुशी की बात है। आप लोगों ने तो मेरा मन ही हलका कर दिया। मैं तो पिछले एक महीने से इसीलिए ही नहीं सो पाया था कि मुझे उस महिला के बच्चे को हुए कैंसर की चिंता हो रही थी। मेरे पैसे चले गए, उसकी मुझे चिंता नहीं है, बल्कि मुझे तो प्रसन्नता इस बात की हैं कि उसके बच्चे को कैंसर नहीं है। पैसा तो आता-जाता ही रहता है।'' महापुरुषों के हृदय सदा करुणा से सिक्त ही रहते हैं।

राष्ट्र की भाषा है हिंदी

भाषा संप्रेषण प्रमुख आधार है। यह अतिशयोक्ति नहीं है कि मानव जाति का विकास भाषा के माध्यम से ही हुआ है। भाषा अभिव्यक्ति का महत्त्वपूर्ण साधन है। किसी समाज या देश का विकास उस समाज या देश के लोगों के विचार और उसकी अभिव्यक्ति पर निर्भर करता है। भारत एक बहुभाषी देश है। सुप्रसिद्ध भाषा वैज्ञानिक एवं हिंदी साहित्य के इतिहास के लेखक जॉर्ज अब्राहम गियर्सन ने अपनी पुस्तक लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया (1898-1928) में लिखा है कि भारत में 364 भाषाएँ एवं बोलियाँ हैं।

दि पीपुल्स लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया (भारतीय लोकभाषा सर्वेक्षण-2013) द्वारा वर्ष, 2013 में प्रकाशित रिपोर्ट के अनुसार भारत में तब 780 भाषाएँ प्रचलित थीं। संविधान द्वारा मान्यताप्राप्त भाषाएँ 22 हैं। इस प्रकार अनेक भाषाओं की भिन्नताओं में भी भारतीय संस्कृति एक होने के कारण कश्मीर से कन्याकुमारी तक तथा कच्छ से कामरूप तक की जनता ने अपनी आवश्यकताओं और परस्पर सहयोग के लिए हिंदी भाषा को संपर्क भाषा के रूप में स्वीकारा है।

इस प्रकार देश भर में परस्पर सहयोग के लिए जिस भाषा को जनता स्वीकार कर चुकी है उस हिंदी भाषा को आजकल हम राष्ट्रभाषा, देश की भाषा, संपर्क भाषा, जोड़ने वाली भाषा, सहयोग की भाषा आदि नामों से जानते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं है कि भारत में लगभग एक हजार वर्ष पूर्व से ही देश की भाषा, राष्ट्रभाषा या संपर्क की भाषा के रूप में हिंदी का प्रयोग किया जाता रहा है। इसके लिए न तो हिंदीप्रेमियों को आंदोलन की जरूरत पड़ी थी और न ही किसी सरकारी व्यवस्था की शरण की आवश्यकता हुई। हिंदी—जनता की माँग पर अपने आप देश की सर्वजन की भाषा बनी हुई है।

आज देश में हिंदी के प्रति जो शब्द प्रयुक्त होते हैं, वे भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में प्रयोग होने वाली हिंदी कें आधार पर प्रयोग किए जाने वाले शब्द हैं। स्थूल में सबका मतलब यही है कि भारत के हरेक कार्यक्षेत्र में हिंदी का प्रयोग हो; क्योंकि भारत की सामान्य जनता हिंदी को आसानी से समझती है। आज हिंदी कई रूपों में प्रयोग हो रही है, जैसे राष्ट्रभाषा हिंदी, राजभाषा हिंदी, प्रशासनिक हिंदी, तकनीकी हिंदी, बोल-चाल की हिंदी, प्रयोजनमूलक हिंदी आदि। मगर गौर से देखा जाए तो उपर्युक्त सभी रूप राष्ट्रभाषा हिंदी के ही अंतर्गत आते हैं या समा जाते हैं। अत: स्पष्ट है कि हिंदी का विकास या प्रचार-प्रसार किसी भी रूप में क्यों न हो आखिरकार वह राष्ट्रभाषा हिंदी का ही होता है।

जैसा कि हम जानते हैं कि 14 सितंबर, 1949 को हिंदी को संघ की राजभाषा के रूप में 324 सदस्यों वाली संविधान सभा ने एकमत से स्वीकार किया और 26 जनवरी, 1950 से देश का संविधान लागू होते ही हिंदी संघ की राजभाषा बन गई। धारा 343 से 351 तक तथा उनके साथ लगे अनुबंधों और उपबंधों में इसका उल्लेख है। जैसा कि पहले कहा गया है कि हिंदी राष्ट्रभाषा के रूप में लगभग एक हजार वर्ष से चली आ रही है।

संविधान या विधि के अनुसार राष्ट्रभाषा का अर्थ कुछ भी हो, परंतु साधारण जनता के अनुसार तो राष्ट्रभाषा वही है, जो सारे भारत को जोड़ती है और भिन्न-भिन्न मातृभाषियों के बीच में संपर्क भाषा के रूप में काम करती है। इस दृष्टि से भारत की राष्ट्रभाषा हिंदी है। यह मान्यता एक अलिखित परंपरा है, जो भारतीय जनता के मस्तिष्क पटल पर सदियों से है। राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी की परंपरा चंदबरदायी, अमीर खुसरो के समय से चली आ रही है। समय-समय पर बदलते परिवेश में हिंदी भी बदलती गई।

जैसा कि संत कबीरदास ने कहा है कि भाषा बहता नीर है। हिंदी भाषा हमेशा नए शब्दों का गठन, अर्जन और संग्रह करते हुए अपने को नई परिस्थिति के अनुसार ढालते हुए आगे बढ़ती रही है। देश भर में हिंदी का प्रचार-प्रसार और विकास देश की जनता की माँग है। देश की जनता ने ही अपने आप इस भाषा को व्यवहार की भाषा के रूप में, संपर्क भाषा के रूप में या फिर आपस में विचार-विनिमय के लिए कामचलाऊ भाषा के रूप में स्वीकारा है। इस तरह हिंदी को जोड़ने वाली भाषा के रूप में या संपर्क भाषा के

रूप में स्वीकार करने के लिए देश की जनता पर किसी का दबाव नहीं था।

स्वयं जनता ने एकदूसरे के साथ जुड़ने के लिए इस भाषा को स्वीकारा है। भारत के इतिहास में अब तक दो ऐसी महत्त्वपूर्ण परिस्थितियाँ आई हैं, जिसमें देश की जनता अपने आप संकीर्ण भावनाओं से ऊपर उठकर एकजुट हो गई थी। दूसरे अर्थों में संपूर्ण भारत एक हो गया था। इनमें से पहला था मध्यकालीन भक्ति आंदोलन का समय। इस समय देश की जनता भक्ति के नाम पर एक हो चुकी थी। पूरे देश में साधु, संत, कवियों ने देश भ्रमण करते हुए देश की सामाजिक, धार्मिक परिस्थितियों को सुधारा और जनता में जीवन के प्रति आस्था और विश्वास की भावना को जगाया।

कहने की आवश्यकता नहीं है कि राष्ट्रीय एकीकरण की इस प्रक्रिया में हिंदी का योगदान महत्त्वपूर्ण रहा है। सही अर्थों में उस समय हिंदी राष्ट्रभाषा के रूप में अपना दायित्व निभाती रही। कबीर, तुलसी, सूर, जायसी, मीरा जैसे कई प्रसिद्ध कवियों ने हिंदी के माध्यम से देश व समाज को संगठित करने का काम किया है।

दूसरी परिस्थिति आजादी की लड़ाई की थी। इस समय में भी जनता का अँगरेजों के विरोध में जो संघर्ष चला, उसमें जनता को एकजुट करने में हिंदी की भूमिका अहम रही है। संपूर्ण आजादी की लड़ाई हिंदी के माध्यम से चली थी—यह कहने में कोई अतिशयोक्ति न होगी। उस समय कई महान नेता थे, जिनकी मातृभाषा हिंदी न होते हुए भी उन्होंने अपनी प्रादेशिक संकीर्णताओं से ऊपर उठकर देश के हित में न केवल हिंदी सीखी, बल्कि हिंदी का प्रचार व प्रसार भी किया।

स्वतंत्रता सेनानी श्री पट्टाभि सीतारामैया जी जैसे कर्मठ हिंदी प्रेमी के लिए मछलीपट्टणम् के डाकघर में हिंदी जानने वाले कर्मचारी को नियुक्त करना पड़ा; क्योंकि वे पते भी हिंदी में ही लिखते थे। ऐसे कई स्वतंत्रता सेनानी हिंदी पढ़ना-पढ़ाना देशभक्ति का कार्य मानते थे। वे अपने हाथों में हिंदी की पुस्तकें पकड़ने को देशभक्ति का चिह्न मानते थे।

हिंदी के प्रचार-प्रसार के बारे में महात्मा गांधी ने दिनांक 23 मार्च, 1918 को इंदौर में आठवें हिंदी साहित्य सम्मेलन की अध्यक्षता करते हुए कहा है कि 'मेरा नम्र लेकिन दृढ़ अभिप्राय है कि जब तक हम हिंदी को राष्ट्रीय दरजा और अपनी-अपनी प्रांतीय भाषाओं को उनका योग्य स्थान नहीं देंगे, तब तक स्वराज्य की सब बातें निरर्थक हैं।'

इसी प्रकार नेताजी सुभाषचंद्र बोस का भी कहना था कि 'शायद हममें कुछ ऐसे आदमी हैं, जिन्हें इस बात का डर है कि हिंदी वाले हमारी मातृभाषा को छुड़ाकर उसके स्थान में हिंदी रखना चाहते हैं। यह भी निराधार भ्रम है। हिंदी प्रचार का उद्देश्य केवल यही है कि आजकल जो काम अँगरेजी से किया जाता है, वह आगे चलकर हिंदी में लिया जाएगा। अपनी माता से भी ज्यादा प्यारी मातृभाषा को हम कदापि नहीं छोड़ सकते, किंतु भारत के विभिन्न प्रांतों के भाइयों से बातचीत करने के लिए हिंदी या हिंदुस्तानी तो सीखनी ही चाहिए।'

इनके अलावा हिंदी के प्रचार-प्रसार करने वाले हिंदीतर नेताओं में गुजरातीभाषी सरदार वल्लभभाई पटेल, के० एम० मुंशी, मराठीभाषी लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक, आचार्य विनोबा भावे, तमिलभाषी डॉ० सुब्रह्मण्यम भारती, बांग्लाभाषी चक्रवर्ती राजगोपालाचारी, कन्नड़भाषी रंगनाथ रामचंद्र दिवाकर, असमियाभाषी गोपबंधु चौधरी, तेलुगुभाषी पट्टाभि सीतारामैया, मोटूरी सत्यनारायण आदि के नाम आदर से लिए जा सकते हैं।

इन सभी के प्रयासों से देश आजाद होने तक संपूर्ण देश की भाषा के रूप में हिंदी का प्रचार-प्रसार हो चुका था। आजादी के पश्चात देश की शासन-व्यवस्था को सुचारु रूप से चलाने के लिए संघ की राजभाषा के रूप में हिंदी को संविधान में स्वीकार किया गया। इस कारण हिंदी का एक नया रूप विकसित हो पाया। राजभाषा के पद पर सुशोभित होने के बाद आरंभिक वर्षों में हिंदी को कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ा तथा प्रशासन के सभी विभागों के पारिभाषिक व तकनीकी शब्दकोशों का निर्माण करना पड़ा।

इसके अतिरिक्त कई विज्ञान, विधि, तकनीकी विभागों के संबंध में प्रयोग होने वाले प्रारूपों, पदनाम, वाक्यांश, टिप्पणियाँ आदि को भी तैयार करना पड़ा, परंतु इस कार्य को सफलतापूर्वक गृह मंत्रालय, विधि मंत्रालय, मानव संसाधन विकास मंत्रालय आदि ने अन्य संस्थाओं से जुड़कर संपन्न किया। यह वह समय था, जब कुछ संकीर्ण तत्त्व राजनीतिक स्वार्थ के लिए हिंदी का विरोध कर रहे थे और कुछ ऐसे

लोग थे, जो हिंदी के नए शब्दों पर हास-परिहास कर रहे थे। यह हमारे पारिभाषिक तथा तकनीकी शब्दावली के निर्माताओं का अदम्य साहस एवं सूझ-बूझ था कि जिन्होंने अथक परिश्रम से नए शब्दों का सटीक निर्माण किया।

इस प्रकार कई आरंभिक कठिनाइयों को पार करते हुए आज राजभाषा के रूप में हिंदी पूर्णत: सक्षम हुई है। आज सरकारी कार्यालयों, उपक्रमों, विज्ञान, विधि, चिकित्सा, व्यापार उद्योग, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, मीडिया, अंतरजाल आदि कई क्षेत्रों में हिंदी विपुल शब्द-संपदा के साथ समृद्ध है। अब हिंदी में कमियों को ढूँढ़ने की बहानेबाजी के लिए कोई जगह नहीं है।

आज का दौर बहुत बदल चुका है। आज देश की परिस्थितियाँ बदली हैं। संकीर्णता की मानसिकता से लोग व्यक्तिगत रूप से ऊपर उठ रहे हैं। अब की पीढ़ी हिंदी सीखने, सिखाने में रुचि दिखा रही है। आज हिंदी एक आवश्यकता की वस्तु बन गई है। जैसे सामाजिक, आर्थिक जरूरत की वस्तु हमेशा अपने आप विकसित होती है, वैसे ही हिंदी की माँग भी बढ़ रही है। सन् 1955-65 के बीच चले संकीर्ण भावनाओं से ग्रसित हिंदी विरोधी आंदोलन अब नहीं हैं। उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण के कारण रोजगार तथा व्यापार के क्षेत्र में हिंदी का प्रयोग बढ़ता जा रहा है। अपने देश में ही नहीं, बल्कि दुनिया के कई देशों में हिंदी को सिखाया जा रहा है।

संयुक्त राष्ट्र संघ की अधिकारिक (राजभाषा) के रूप में हिंदी को भी मान्यता मिलने की संभावना है। स्विट्जरलैंड में आल्प्स पर्वत के ऊपर जाने वाले रोपवे ट्राली स्टेशन का एक बड़ा-सा साइनबोर्ड लगा है। उस पर लिखा है—'आल्प्स पर्वत पर आपका स्वागत है।' यह वाक्य विश्व की पाँच भाषाओं में लिखा गया है। उनमें से एक भाषा हिंदी है। यह तथ्य साझा करने का अभिप्राय है कि हिंदी भाषा की लोकप्रियता बढ़ती जा रही है। यह अत्यंत उत्कृष्ट, समृद्ध एवं मधुर भाषा है। अपनी क्षेत्रीयता एवं संकीर्णता से ऊपर उठकर हमें हिंदी भाषा का प्रयोग करना चाहिए। हिंदी बोलकर हमें गर्व का अनुभव करना चाहिए। ❑

महिला संत पेरम्मा भगवद्उपासना में तल्लीन थीं, तभी कई लोग उनकी कुटिया पर पहुँचकर उनसे मिलने का आग्रह करने लगे। पेरम्मा के शिष्यों ने उन्हें ऐसा करने से रोका और कहा कि उन्हें आवाज देने से उनकी उपासना में विघ्न पड़ेगा, अत: वे कुछ समय उपरांत लौटकर आएँ, परंतु अब तक पेरम्मा अपने ध्यान से उठ चुकी थीं। उन्होंने बाहर आकर लोगों की परेशानी का कारण पूछा। उन्होंने बताया कि गाँव में किसी का स्वास्थ्य सही नहीं है।

पेरम्मा बिना समय गँवाए उन लोगों के साथ चल दीं और बीमार व्यक्ति की सेवा-शुश्रूषा में निरत हो गईं। उन्होंने अपने शिष्यों को उस व्यक्ति के लिए जरूरी औषधि लाने के लिए भेजा, जिसे लेकर वह व्यक्ति स्वस्थ हो गया। अब उनके शिष्यों ने उनसे इस कार्य के लिए अपनी उपासना भंग करने का कारण पूछा तो वे बोलीं—''समस्त प्राणी ईश्वर का ही अंश हैं। उनकी सेवा, ईश्वर की साक्षात् उपासना है। पीड़ा-निवारण करने से बढ़कर और कोई साधना नहीं हो सकती।''

गुरु की शरणागति से शिष्य को मिलता है शाश्वत सुख

सुल्तानपुर में रहते हुए गुरु नानकदेव कारोबारी काम से मुक्ति पाकर नित्य अपने मित्र मरदाने के साथ कीर्तन किया करते थे। धीरे-धीरे दूर-दूर से प्रेमी जन उनका कीर्तन सुनने को उनके पास आने लगे। नानक जी ने प्रात: तथा संध्या, दोनों समय कीर्तन के लिए निश्चित कर लिए थे। अपने कार्य से अवकाश पाकर वे मरदाने को साथ लेकर किसी विशेष रमणीक स्थान पर कीर्तन करने जा विराजते।

प्रभु की स्तुति में नानकदेव जो भी शब्द कहते, उन्हें मरदाना अपने मधुर सुरों से सजा देते। इस प्रकार दोनों मित्र परमेश्वर की आराधना में डूब जाते। धीरे-धीरे कीर्तन के रसिक अन्य भक्त भी गुरु नानकदेव की कीर्तन-मंडली में आने लगे। उन्हीं में से एक भाई भगीरथ भी एक दिन वहाँ कीर्तन सुनने को पधारे।

भगवद्‌उपासक होने के कारण भाई भगीरथ जी भी भगवान की स्तुति में कुछ रचनाएँ गाया करते थे, परंतु उन्हें इससे आत्मिक आनंद नहीं मिल पाता था; क्योंकि वे सभी रचनाएँ मनोकल्पित होती थीं, किंतु नानक जी की वाणी कोई कल्पना या अनुमान न होकर अनुभूतिजन्य होती थी और उसमें प्रभु से अभेदता के अनुभव का भाव होता था, जो कि भाई भगीरथ एवं वहाँ आए अन्य प्रेमी जनों को मंत्रमुग्ध कर उन्हें आत्मिक आनंद से सराबोर कर देता था।

यही कारण था कि नानक जी के कीर्तन की ख्याति दूर-दूर तक फैलती जा रही थी। यह ख्याति सुनकर भाई भगीरथ ने नानक जी की आत्मा से निस्सृत रसमय कीर्तन व उनकी दिव्य वाणी को श्रवण किया तो वे अपनी सुध-बुध खो बैठे।

गुरु नानकदेव जी के श्रीमुख से झरते परमात्मा के प्रेमरस को पीकर भाई भगीरथ जी के रोम-रोम पुलकित हो उठे। गुरु नानकदेव जी को गाते देखकर उन्हें ऐसा लगता मानो परमात्मा-ही-परमात्मा के लिए उस भजन को गा रहे हों। मानो परमात्मा-ही-परमात्मा की स्तुति कर रहे हों।

अंतत: गुरु नानकदेव से प्रभावित होकर भाई भगीरथ जी उनके चरणों में गिर पड़े और विनती करने लगे कि 'आप मुझे अपना शिष्य बना लें, जिससे कि मैं आपसे आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त कर सकूँ। आज तक मैं केवल भटकता रहा हूँ। अब से पूर्व मुझे कभी भी वह आत्मिक आनंद प्राप्त नहीं हुआ था, जो मुझे आज आपकी शरण में आने पर और आपकी वाणी सुनने पर प्राप्त हुआ है।'

यह सुनकर नानकदेव ने भाई भगीरथ को उठाकर अपने हृदय से लगा लिया और उन्हें उपदेश देते हुए कहा—"परमात्मा सर्वत्र व्याप्त हैं। निराकार व सर्वव्यापी परमात्मा ही साकार रूप में प्रकट होते हैं। परमात्मा जन्म-मरण से मुक्त हैं। परमात्मा ही व्यक्ति को मुक्ति प्रदान कर सकते हैं, मोक्ष प्रदान कर सकते हैं। इसलिए तुम सदैव परमात्मा की ही उपासना करो, आराधना करो, अभ्यर्थना करो, प्रार्थना करो। इसी में तुम्हारा व समस्त मानवता का कल्याण है।"

गुरु नानकदेव ने भाई भगीरथ एवं अन्य शिष्यों को तीन सूत्री आदेश देते हुए कहा कि 'कृत करो, वण्ड के छको तथा नाम जपो। कृत करो अर्थात सत्कर्म करो और पुरुषार्थ करके जीविका कमाओ। वण्ड के छको अर्थात अर्जित धन को स्वयं के साथ-साथ परोपकार में भी लगाओ। 'नाम जपो' अर्थात सदा प्रभु का नाम स्मरण-सुमिरन करते रहो। बस, यही सिद्धांत, यही सूत्र तुम्हें भवसागर से पार कर तुम्हारा कल्याण करेंगे। तुम इसी पर दृढ़ता से जीवनयापन करो।'

यह सुनकर भाई भगीरथ जी कहने लगे कि 'आज से मैंने आपको अपने आध्यात्मिक गुरु के रूप में वरण कर लिया है, धारण कर लिया है। अत: आप भी मुझे अपने शिष्य रूप में स्वीकार करें तथा मुझे दीक्षा देकर कृतार्थ करें।' तब नानक जी ने उनको अपना प्रथम शिष्य (सिख) मानकर उन्हें चरणामृत देकर अपना शिष्य बनाया। तब भाई भगीरथ ने कहा—'हे गुरुदेव! आपने मुझे सत्यमार्ग के दर्शन कराए हैं। मैं सदैव इस मार्ग पर चलता रहूँगा तथा दूसरों को भी इस मार्ग पर चलने को प्रेरित करूँगा। हे गुरुदेव! आपसे दीक्षा पा लेने के बाद अब हमारी अपनी कोई इच्छा नहीं

रही। अब आपकी इच्छा ही हमारी इच्छा है। अतः मैं आपको वचन देता हूँ कि आज से मैं आपके बताए सत्यमार्ग पर ही चलूँगा साथ ही दूसरों को भी इस मार्ग पर चलने को प्रेरित करता रहूँगा।''

अपने शिष्य के मुख से ऐसी बातें सुनकर गुरु नानकदेव ने हर्षित होकर उन्हें अपने हृदय से लगा लिया साथ ही उन्हें यह आशीर्वाद देते हुए विदा किया कि 'परमात्मा सदैव तुम्हारे साथ हैं। वे सदैव तुम्हारा मार्गदर्शन करते रहेंगे।'

भाई भगीरथ अपने गुरु का आशीष पा वहाँ से विदा हुए और आजीवन गुरु-कार्य में लगे रहे। सचमुच गुरु की शरण पाकर शिष्य निहाल हो जाता है। गुरु की शरणागति से ही शिष्य को शाश्वत सुख प्राप्त होता है। गुरु का अमृतज्ञान पाकर शिष्य का जीवन सुख-सौभाग्य और आनंद से भर जाता है। ❑

बात उस समय की है जब नेपोलियन सेना के साथ युद्ध में लड़ रहा था। उन दिनों संदेश घुड़सवारों के जरिए भेजे जाते थे। नेपोलियन अपने डेरे में था तभी एक संदेशवाहक बड़ी तेजी से आया, जैसे ही वह डेरे पर पहुँचा, वैसे ही उसका घोड़ा थकान, भूख और प्यास से मर गया; क्योंकि वह रास्ते में कहीं भी आराम के लिए नहीं रुका था।

नेपोलियन ने उसका लाया हुआ संदेश पढ़कर उसे जवाब तुरंत लिखकर दे दिया; क्योंकि संदेश को सेना तक जल्दी-से-जल्दी पहुँचाना जरूरी था, इसलिए नेपोलियन ने घुड़सवार को तुरंत रवाना होने को कहा। जब संदेशवाहक सैनिक ने बताया कि उसका घोड़ा मर गया है तो नेपोलियन ने तुरंत कहा कि कोई बात नहीं, तुम मेरा खास घोड़ा ले जाओ।

यह सुनकर सैनिक हैरान हो गया; क्योंकि वह घोड़ा बहुत खास था। उसके कई किस्से प्रचलित थे। सैनिक ने कहा—''मैं छोटा सैनिक आपके घोड़े पर कैसे बैठ सकता हूँ ?''

नेपोलियन बोला—''देखो! सामान्य घोड़ा धीरे दौड़ेगा और तुम देर से युद्धस्थल पहुँचोगे। हो सकता है कि इसकी वजह से हम हार जाएँ, फिर न यह घोड़ा खास रहेगा और न मेरी सम्राट की पदवी! जीवन में समयानुसार सब करना पड़ता है। तुम इसी घोड़े को लेकर, तुरंत रवाना हो जाओ।'' सैनिक नेपोलियन की विनम्रता व दूरदर्शिता से बहुत प्रभावित हुआ और घोड़ा लेकर रवाना हो गया।

वेदों में नारी को वेदाध्ययन करने का स्पष्ट संदेश है। ऋग्वेद में ऋषि संदेश देते हुए कह रहे हैं कि हे समस्त नर-नारियो! तुम्हारे लिए ये मंत्र समान रूप से दिए गए हैं तथा तुम्हारा परस्पर विचार भी समान रूप से हो। मैं तुम्हें समान रूप से ग्रंथों का उपदेश करता हूँ। अथर्ववेद में स्पष्ट संदेश है कि ब्रह्मचर्य का पालन कर कन्या वर का ग्रहण करे। यहाँ पर ब्रह्मचर्य का अर्थ है ब्रह्मा अर्थात वेद में चर अर्थात गमन, ज्ञान या प्राप्ति करना।

अथर्ववेद में नववधू को संबोधित करते हुए उपदेश दिया गया है कि हे वधू! तेरे आगे-पीछे, मध्य में, अंत में सर्वत्र वेदविषयक ज्ञान रहे और वेदज्ञान के अनुरूप तुम अपने सारे जीवन का संचालन करना। इसी प्रकार से यजुर्वेद में स्त्री को उपदेश है कि **इमा ब्रह्मा पीपिही**—अर्थात सौभाग्य की प्राप्ति के लिए वेदमंत्रों के अमृत का बार-बार अच्छी प्रकार से पान कर।

ऋग्वेद में स्वामी दयानंद लिखते हैं कि जो कन्या 24 वर्षपर्यंत ब्रह्मचर्यपूर्वक अंग-उपांग सहित वेद-विद्याओं को पढ़ती है, वो मनुष्य जाति को सुशोभित करने वाली होती है। यजुर्वेद के भाष्य में स्वामी दयानंद लिखते हैं कि यदि मनुष्य इस सृष्टि में ब्रह्मचर्य आदि से कुमार और कुमारियों को द्विज बनाएँ तो वे शीघ्र विद्वान हो जाएँ। ऋग्वेद के भाष्य में स्वामी दयानंद लिखते हैं कि जिस प्रकार वैश्य लोग धर्म धारण करके धनोपार्जन करते हैं, उसी प्रकार कन्याओं को चाहिए कि विवाह से पहले शुभ ब्रह्मचर्य व्रत धारण करके विदुषी अध्यापिकाओं को प्राप्त करके सुशिक्षा प्राप्त करें और विद्यासंचय करके विवाह करें।

ऋग्वेद के भाष्य में स्वामी दयानंद लिखते हैं कि जैसे ब्रह्मचर्य करके यौवनावस्था को प्राप्त हुई विदुषी कुमारी कन्या अपने पति को प्राप्त कर निरंतर उसकी सेवा करती है और जैसे ब्रह्मचर्य को किए हुए पुरुष अपनी प्रीति के अनुकूल चाही हुई स्त्री को पाकर आनंदित होते हैं, वैसा ही सदा होवे।

महाभारत में स्पष्ट रूप से लिखा है कि जिनका धर्म समान हो और वेद-शास्त्रविषयक ज्ञान समान हो, उनमें मित्रता और विवाह आदि हो सकते हैं, बलवान और सर्वथा निर्बल व्यक्तियों में नहीं। वेदों में स्त्री को विदुषी बनने का और अपने गुण, कर्म और स्वभाव के अनुसार गुणशाली वर चुनने का श्रेष्ठतम अधिकार दिया गया है।

इस प्रकार वेदों में अनेक मंत्र स्त्रियों को वेदाध्ययन की प्रेरणा देते हैं। वेदों में अनेक सूक्त हैं, जैसे ऋग्वेद आदि जिनकी ऋषिकाएँ गोधा, घोषा, विश्ववारा, अपाला, उपनिषद्, निषद, रोमशा आदि हुई हैं। ये ऋषिकाएँ न केवल वेदों को पढ़ती थीं, उनके रहस्य को समझती थीं अपितु उनका प्रचार भी करती थीं। इन ऋषिकाओं की सूची बृहत् देवता अध्याय में मिलती है। ऋषिकाओं को ब्रह्मवादिनी भी कहा जाता था और इनको नियमपूर्वक उपनयन, वेदाध्ययन, वेदाध्यापन का अधिकार तथा गायत्री मंत्र का उपदेश प्रदान किया जाता था।

वैदिककाल में नारी को यज्ञ में भाग लेने का पूर्ण अधिकार था जिसे मध्यकाल में वर्जित कर दिया गया था। कुछ ग्रंथों में इस बात को प्रचलित कर दिया गया कि नारी का स्थान यज्ञवेदी से बाहर है अथवा कन्या और युवती अग्निहोत्र की होता नहीं बन सकतीं। वेद परम प्रमाण हैं, इसलिए इस शंका का समाधान भी वेद भली प्रकार से करते हैं। वेद नारी जाति को यज्ञ में भाग लेने का पूर्ण अधिकार देते हैं।

ऋग्वेद में कहा गया है कि जो पति-पत्नी समान मनवाले होकर यज्ञ करते हैं उन्हें अन्न, पुष्प, हिरण्य आदि की कमी नहीं रहती है। ऋग्वेद में कहा गया है कि विवाह यज्ञ में वर-वधू उच्चारण करते हुए एकदूसरे का हृदय स्पर्श करते हैं। ऋग्वेद में कहा गया है कि विद्वान लोग पत्नी सहित यज्ञ में बैठते हैं और नमस्करणीय (नमन करने योग्य जैसे ईश्वर, विद्वान आदि) को नमस्कार करते हैं। इस प्रकार यजुर्वेद और अथर्ववेद में भी यज्ञ में नारी के भाग लेने के स्पष्ट प्रमाण हैं।

'नारी सशक्तीकरण' वर्ष

नारी को यज्ञ में ब्रह्मा तक बनने का अधिकार है। यज्ञ में ब्रह्मा का पद सबसे ऊँचा होता है। ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार ज्ञान, कर्म और उपासना तीनों विद्याओं के प्रतिपादक वेदों के पूर्ण ज्ञान से ही मनुष्य ब्रह्मा बन सकता है। शतपथ ब्राह्मण में इसी तथ्य का समर्थन किया गया है। गोपथ ब्राह्मण के अनुसार—जो सबसे अधिक वेदों का ज्ञाता हो, उसे ब्रह्मा बनाना चाहिए। ऋग्वेद में नारी को कहा गया है कि **स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ**—अर्थात इस प्रकार से उचित सभ्यता के नियमों का पालन करती हुई नारी निश्चित रूप से ब्रह्मा के पद को पाने योग्य बन सकती है।

मनुस्मृति में लिखा है कि धर्म को मानने की इच्छा रखने वालों के लिए वेद ही परम प्रमाण हैं। कुछ लोग कहते हैं कि वेदों में दहेज देने की प्रथा का विधान है, जिसके कारण नारी जाति पर अनेक अत्याचार हो रहे हैं। वेदों में पुत्री को दहेज से अलंकृत करने का संदेश दिया गया है, परंतु यहाँ पर दहेज का वास्तविक अर्थ उससे भिन्न है, जैसा प्राय: प्रचलित है।

अथर्ववेद के मंत्र में पिता द्वारा कन्या को स्तुति वृत्ति वाला बना देना ही पुत्री के लिए सच्चा दहेज है। यहाँ पर स्तुति वृत्ति का भाव है—पुत्री सदा दूसरों के गुणों की प्रशंसा करने वाली हो, किसी के भी अवगुणों की ओर ध्यान नहीं देने वाली हो अर्थात परनिंदा नहीं करने वाली हो एवं उसके गहने उसकी भद्रता, उसका शिष्टाचार हों और उसमें गुणगान करने की वृत्ति हो।

यहाँ पर पुत्री को गुणों से सुशोभित करना एक पिता के लिए सच्चा दहेज देने के समान है। कालांतर में कुछ लोभी लोगों ने दहेज का अर्थ धन समझ लिया, जिसके कारण उनका लालच बढ़ता गया एवं उसका परिणाम नारी जाति पर अत्याचार के रूप में आया, जो निश्चित रूप से सभ्य समाज के माथे पर कलंक के समान है।

आज समाज में कन्या भ्रूणहत्या का महापाप प्रचलित हो गया है—जिसका मुख्य कारण नारी जाति का समाज में उचित सम्मान न होना, धन आदि के रूप में दहेज जैसी कुरीतियों का होना, समाज में बलात्कार जैसी घटनाओं का बढ़ना, चरित्र दोष आदि हैं, जिनसे नारी जाति की रक्षा कर पाना कठिन हो गया है। ऐसे में समाज में पुत्र की कामना अधिक बलवती हो उठी है एवं पुत्री को बोझ समझा जाने लगा है।

सत्य यह है कि वेदों में पत्नी को ऊषा के समान प्रकाशवती, वीरांगना, वीरप्रसवा, विद्यालंकृता, स्नेहमयी माँ, पतिवरा (पति का वरण करने वाली), अन्नपूर्णा, सद्गृहिणी और साम्राज्ञी आदि संबोधनों से संबोधित किया गया है, जो निश्चित रूप से नारी जाति को उचित सम्मान प्रदान करते हैं।

वेदों में नारी जाति की यशगाथा के लिए कुछ ऐसे वेदमंत्र हैं; जैसे मेरे पुत्र शत्रुहंता हों और पुत्री भी तेजस्विनी हो। प्रतिप्रहर हमारी रक्षा करने वाले पूषा परमेश्वर हमें कन्यायों का भागी बनाएँ अर्थात कन्या प्रदान करें। हमारे राष्ट्र में विजयशील सभ्य वीर युवक पैदा हों, वहाँ साथ ही बुद्धिमती नारियों के उत्पन्न होने की भी प्रार्थना है। जैसा यश कन्या में होता है, वैसा यश मुझे प्राप्त हो। इस प्रकार से नारी जाति का वेदों में महिमामंडन है।

वेदों में स्पष्ट रूप से एक ही पत्नी होने का विधान बताया गया है। ऋग्वेद 10/85 को विवाह सूक्त के नाम से जाना जाता है। इस सूक्त के मंत्र में कहा गया है कि तुम दोनों इस संसार व गृहस्थ आश्रम में सुखपूर्वक निवास करो। तुम्हारा कभी परस्पर वियोग न हो और सदा प्रसन्नतापूर्वक अपने घर में रहो। यहाँ पर हर मंत्र में तुम दोनों अर्थात पति और पत्नी आया है। अगर बहुपत्नी का संदेश वेदों में होता तो तुम सब आता। ऋग्वेद में आया है कि हम दोनों (वर-वधू) सब विद्वानों के सम्मुख घोषणा करते हैं कि हम दोनों के हृदय जल के समान शांत और परस्पर मिले हुए रहेंगे। अथर्ववेद में पति-पत्नी के मुख से कहलाया गया है कि तुम मुझे अपने हृदय में बैठा लो, हम दोनों का मन एक ही हो जाए।

ऋग्वेद में बहुविवाह की निंदा करते हुए वेद कहते हैं कि जिस प्रकार रथ का घोड़ा दोनों धुरिओं के मध्य में दबा हुआ चलता है, वैसे ही एक समय में दो स्त्रियाँ करने वाला पति दबा हुआ होता है अर्थात परतंत्र हो जाता है। इसलिए एक समय दो व अधिक पत्नियाँ करना उचित नहीं है। इस प्रकार वेदों में बहुविवाह के विरुद्ध स्पष्ट उपदेश हैं। वेदों की आलंकारिक भाषा को समझने में गलती करने से इस प्रकार की भ्रांति होती है।

वेद बाल विवाह का समर्थन नहीं करते हैं। हमारे देश पर विभिन्न आक्रांताओं के आक्रमण के पश्चात बालविवाह की कुरीति को समाज ने अपना लिया, जिससे न केवल ब्रह्मचर्य आश्रम लुप्त हो गया, बल्कि शरीर का सही ढंग से

विकास न होने के कारण एवं छोटी उम्र में माता-पिता बन जाने से संतान भी कमजोर पैदा होती गई, जिससे हिंदू समाज दुर्बल-से-दुर्बल होता गया।

अथर्ववेद के ब्रह्मचर्य सूक्त के मंत्र में कहा गया है कि ब्रह्मचर्य (सादगी, संयम और तपस्या) का जीवन बिताकर कन्या युवा पति को प्राप्त करती है। इस मंत्र में नारी को युवा पति से ही विवाह करने का प्रावधान बताया गया है, जिससे बाल विवाह करने की मनाही स्पष्ट सिद्ध होती है।

ऋग्वेद के सूक्त में वर-वधू मिलकर संतान के उत्पन्न करने की बात कह रहे हैं। वधू वर से कह रही है कि तुम पुत्रकाम हो एवं वर वधू से कहता है कि तुम पुत्रकामा हो। अत: हम दोनों मिलकर उत्तम संतान उत्पन्न करें। पुत्र अर्थात संतान उत्पन्न करने की कामना, जो युवा पुरुष और युवती नारी में ही उत्पन्न हो सकती है। छोटे-छोटे बालक और बालिकाओं में नहीं हो सकती है।

इन प्रमाणों से यही सिद्ध होता है कि वेद बालविवाह का समर्थन नहीं करते। संसार की किसी भी धार्मिक पुस्तक में नारी जाति की महिमा का इतना सुंदर गुण-गान नहीं मिलता, जितना वेदों में मिलता है। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—

(1) ऊषा के समान प्रकाशवती—'हे राष्ट्र की पूजायोग्य नारी! तुम परिवार और राष्ट्र में सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् की अरुण कांतियों को छिटकती हुई आओ, अपने विस्मयकारी सद्‌गुणों के द्वारा अविद्याग्रस्त जनों को प्रबोध प्रदान करो। जन-जन को सुख देने के लिए अपने जगमग करते हुए रथ पर बैठकर आओ।'

(2) वीरांगना—'हे नारी! तू स्वयं को पहचान। तू शेरनी है, तू शत्रुरूप मृगों का मर्दन करने वाली है, देव जनों के हितार्थ अपने अंदर सामर्थ्य उत्पन्न कर। हे नारी! तू अविद्या आदि दोषों पर शेरनी की तरह टूटने वाली है, तू दिव्य गुणों के प्रचारार्थ स्वयं को शुद्ध कर। हे नारी! तू दुष्कर्म एवं दुर्व्यसनों को शेरनी के समान नष्ट करने वाली है, धार्मिक जनों के हितार्थ स्वयं को दिव्य गुणों से अलंकृत कर।'

(3) वीरप्रसवा—'राष्ट्र को नारी कैसी संतान दे, हमारे राष्ट्र को ऐसी अद्‌भुत संतान प्राप्त हो, जो उत्कृष्ट कोटि के हथियारों को चलाने में कुशल हो, उत्तम प्रकार से अपनी तथा दूसरों की रक्षा करने में प्रवीण हो, सम्यक नेतृत्व करने वाली हो, धर्म, अर्थ, काम, मोक्षरूपी चार पुरुषार्थ, समुद्रों का अवगाहन करने वाली हो, विविध संपदाओं की धारक हो, अतिशय क्रियाशील हो, प्रशंसनीय हो, बहुतों से वरणीय हो, आपदाओं की निवारक हो।'

(4) विद्या अलंकृता—'विदुषी नारी अपने विद्या-बलों से हमारे जीवनों को पवित्र करती रहे। वह कर्मनिष्ठ बनकर अपने कर्मों से हमारे व्यवहारों को पवित्र करती रहे। अपने श्रेष्ठ ज्ञान एवं कर्मों के द्वारा संतानों एवं शिष्यों में सद्‌गुणों और सत्कर्मों को बसाने वाली वह देवी गृह आश्रम, यज्ञ एवं ज्ञानयज्ञ को सुचारु रूप से संचालित करती रहे।'

(5) स्नेहमयी माँ—'हे प्रेमरसमयी माँ! तुम हमारे लिए मंगलकारिणी बनो, तुम हमारे लिए शांति बरसाने वाली बनो, तुम हमारे लिए उत्कृष्ट सुख देने वाली बनो। हम तुम्हारी कृपादृष्टि से कभी वंचित न हों।'

दंभ और अहंकार का प्रदर्शन करके लोगों के ऊपर जो रोब जमाया जाता है, उससे आतंक और कुतूहल हो सकता है; पर श्रद्धा और प्रतिष्ठा का दर्शन दुर्लभ रहेगा।

(6) अन्नपूर्णा—'इस गृहआश्रम में पुष्टि प्राप्त हो, इस गृहआश्रम में रस प्राप्त हो, इस गृहआश्रम में हे देवी! तू दूध-घी आदि सहस्रों पोषक पदार्थों का दान कर। यम-नियमों का पालन करने वाली गृहिणी! जिन गाय आदि पशु से पोषक पदार्थ प्राप्त होते हैं, उनका तू पोषण कर।'

मनुस्मृति में कहा गया है कि 'जहाँ नारियों की पूजा होती है, वहाँ देवता निवास करते हैं।' संसार में नारी जाति को सम्मान देने के लिए इससे सुंदर शब्द शायद ही कहीं मिलेंगे।

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः॥

जिस कुल में नारियों की पूजा, अर्थात सत्कार होता है, उस कुल में दिव्य गुण, दिव्य भोग और उत्तम संतान होते हैं और जिस कुल में स्त्रियों की पूजा नहीं होती, वहाँ जानो उनकी सब क्रियाएँ निष्फल हैं। इस तरह वेदों में, भारतीय शास्त्रों में नारियों को अत्यंत सम्मान की दृष्टि से देखा गया है और वही दृष्टि हमें सदा रखने की जरूरत है। ❑

संयम और सादगी भरे तपोमय जीवन का आदर्श

संयम और सादगी की अपनी आभा है। जब सत्य के साथ सादगी व संयम जुड़ते हैं, तो निश्चित रूप से वे कल्याणकारी होते हैं, सबके लिए प्रेरक होते हैं। आज जब चारों ओर आडंबर, दिखावे, भौंडेपन व अत्यधिक प्रदर्शन के बीच वातावरण दूषित हो चला है, ऐसे में सादगी भरे सभ्य-सुसंस्कृत चलन व परंपराओं के आधार पर ही सामूहिक एवं सामाजिक वातावरण में सकारात्मकता का संचार हो सकता है। इसके लिए साहस भरे अनुशासित कदमों की दरकार है, जो धारा के विपरीत चलकर तपोमय आदर्श को साकार कर सकें।

हालाँकि यह भी एक प्रत्यक्ष सत्य है कि लोकचलन का प्रवाह इतना प्रबल होता है कि आम इनसान इसकी चपेट में बहने के लिए विवश-बाध्य होता है। इसकी चकाचौंध में व्यक्ति व जनसमूह सूखे पत्तों की तरह उड़ते देखे जाते हैं। आज के युग में अनावश्यक दिखावेबाजी, रोब-दाब, झूठा प्रदर्शन, फजूलखर्ची, विलासितापूर्ण जीवन इसी के परिणाम हैं। इनमें व्यक्ति की नासमझी, अदूरदर्शिता तथा मानसिक दुर्बलता ही अधिक उजागर होते हैं।

ऐसा जीवन, ऐसे आयोजन, ऐसे प्रदर्शन तात्कालिक रूप में अपनी चकाचौंध से लोगों को विस्मित कर सकते हैं, कुछ प्रभावित कर सकते हैं, लेकिन इनके दूरगामी परिणाम किसी भी रूप से व्यक्ति व समाज के लिए कल्याणकारी नहीं होते।

ऐसे खोटे चलन को निभाने के लिए कितने तरह के समझौते करने पड़ते हैं, अंतरात्मा की ध्वनि को नकारना पड़ता है, भ्रष्ट तरीकों से संसाधनों की व्यवस्था करनी पड़ती है—जो एक ओर जहाँ जीवन की शांति को भंग करते हैं, तो वहीं व्यक्ति के चरित्र को भी धूमिल करते हैं। समाज में भी एक गलत चलन की शुरुआत का अपराध जाने-अनजाने सर पर मढ़ जाता है; जबकि समझदार एवं दूरदर्शी लोगों का तौर-तरीका दूसरा होता है।

इनके निर्णय विवेक पर आश्रित होते हैं, सत्य की कसौटी पर कसे होते हैं, संवेदनशीलता लिए होते हैं, सम्यक यथार्थ को साथ लेकर चलते हैं और औचित्य के आधार पर तय होते हैं। और इसके लिए आवश्यक साहस भी उनमें अंतर्निहित होता है; क्योंकि सत्य सदा अपने साथ नैतिक एवं आत्मबल को लिए होता है, जिसके आधार पर वह साहसिक निर्णय लेता है। यदि पूरा संसार भी विरोध में एक तरफ खड़ा हो जाए तो भी वह अपने स्थान पर अडिग रहता है।

****

आचार्यो ब्रह्मचारी ब्रह्मचारी प्रजापतिः।
प्रजापतिर्वि राजति विराडिन्द्रोऽभवद्वशी॥

—अथर्ववेद

अर्थात हमारे शिक्षक, नेता और अधिकारी ब्रह्मचारी हों। वे चरित्रभ्रष्ट न हों अन्यथा अनर्थमूलक असामाजिक तत्त्वों का विकास होगा और राष्ट्र पतित हो जाएगा।

****

सादा जीवन उच्च विचार वस्तुतः एक तपोमय जीवन का प्रतीक है, जिसमें पूज्य गुरुदेव के दिए गए साधना सूत्र, यथा—समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी और बहादुरी एक साथ जीवंत हो उठते हैं, जो व्यक्ति के जीवन को अर्थपूर्ण एवं मूल्यवान बनाते हैं। परमपूज्य गुरुदेव एवं परमवंदनीया माताजी स्वयं इसके मूर्तिमान रूप थे व उनके शिष्य इसी परंपरा को आगे बढ़ा रहे हैं। जहाँ भी ऐसा कुछ चल रहा है, वहीं समाज में एक श्रेष्ठ परंपरा का सूत्रपात हो रहा है, परिवार में सुसंस्कारों की सुवास बिखर रही है और वातावरण में एक सकारात्मक ऊर्जा का संचार हो रहा है। ❑

पूज्य गुरुदेव जैसा मैंने देखा-समझा- 2

युगप्रवाह की मूर्तिमान प्रेरणा

गुरुदेव एक व्यक्ति के रूप में नहीं, एक दर्शन के रूप में जिए। उन्हें चर्मचक्षुओं से जिन्होंने देखा, उन्होंने उन्हें देहधारी मानव प्राणी समझा, पर जिसने उन्हें बारीकी से परखा और गहराई तक प्रवेश करके जाँचा, उसने उन्हें युगप्रवाह की मूर्तिमान प्रेरणा के रूप में पाया।

आत्मविद्या इस संसार की सबसे बड़ी विद्या है और विश्व मानव की सुख-शांति के साथ प्रगति-पथ पर अग्रसर होते रहने की सर्वश्रेष्ठ विधि-व्यवस्था है; किंतु दुर्भाग्य ही कहा जाएगा कि इस संसार के प्राण दर्शन की ऐसी दुर्गति हो रही है और इस विडंबना के कारण समस्त मानव जाति को कितनी क्षति उठानी पड़ रही है।

इस अवांछनीय परिस्थिति को वांछनीयता में परिणत करने के लिए अवास्तविक के स्थान पर वास्तविकता को प्रतिष्ठापित करने के लिए यदि गुरुदेव आए या भेजे गए हों तो इसमें कुछ आश्चर्य की बात नहीं है। यह कहना अत्युक्ति न होगी कि वे एक आदर्श मानव का, एक सच्चे अध्यात्मवादी का क्या स्वरूप हो सकता है और क्या होना चाहिए, इसका उदाहरण प्रस्तुत करने के लिए अवतरित हुए।

वाणी और लेखनी से बहुत कुछ कहा और लिखा जाता रहा है। एकदूसरे को उपदेश देने का ढर्रा मुद्दतों से चल रहा है, पर उसका तब तक कोई स्थिर प्रभाव नहीं पड़ सकता, जब तक कि उन आदर्शों—उपदेशों पर चलकर यह न बताया जाए कि इस आधार को अपनाने में किस प्रकार लाभान्वित हुआ जा सकता है। प्रत्यक्ष से ही प्रेरणा मिलती है। आदर्श सम्मुख होने पर ही उसके अनुकरण या अनुगमन की इच्छा उत्पन्न होती है। जीभ से कुछ भी कहा जा सकता है और कान से कुछ भी सुना जा सकता है, पर जब तक प्रत्यक्ष प्रमाण प्रस्तुत न किया जाए, तब तक उस मार्ग पर चलने का साहस सर्वसाधारण को नहीं हो सकता।

इस आवश्यकता की पूर्ति करने के लिए वे आए और उनकी समस्त गतिविधियाँ लोक-मंगल के लिए अध्यात्मवाद की उपयोगिता एवं आवश्यकता सिद्ध करने के इर्द-गिर्द घूमती रहीं। सौभाग्य से मुझे उनके अति समीपवर्ती साथी के रूप में रहने का अवसर लंबे समय तक मिला है। यों सारा संसार उनका घर था और सभी प्राणी उनके आत्मीय थे। चूँकि वे सबके थे, इसलिए कोई एक उन पर अपना अधिकार जमाने की धृष्टता नहीं कर सकता।

सूरज पर, समुद्र पर, पवन पर, आकाश पर कोई अपना अधिकार नहीं जताता, पर लाभ सभी उठाते हैं । मैं उनकी धर्मपत्नी हूँ, इसलिए कुछ अधिकार तो नहीं जताती, पर अपने इस सौभाग्य को, पुण्य प्रारब्ध को भरपूर सराहती हूँ कि मुझे दूसरों की अपेक्षा उनके साथ अधिक समय और अधिक निकट रहने का अवसर मिला।

वे चले गए, इसका दु:ख कितना है और उसे अपने दुर्बल नारी हृदय में कितनी कठिनाई से छिपाने का असफल प्रयत्न कर रही हूँ, इसकी यहाँ चर्चा न करना ही उचित होगा। उनके लिए मेरी ही तरह न जाने कितनों की आँखें बरसी हैं और कितनों के कलेजे फटे हैं। उनके चले जाने से कितनों ने अपने को अनाथ-असहाय समझा है, उन्हीं में से एक मैं भी हूँ। अधिक समीप रहने का अधिक सौभाग्य मिलने से बिछोह की अपेक्षाकृत कुछ अधिक अंतर्व्यथा मुझे सहनी पड़ रही है। उस कसक को छिपाना इसलिए पड़ रहा है कि अपनी 50 लाख संतानों की देख-भाल रखने और स्नेह से सींचते रहने की जिम्मेदारी मेरे दुर्बल कंधों पर छोड़कर गए हैं—उसमें त्रुटि न आने पावे।

इन दिनों उनकी याद जब आती है तो पेट बुरी तरह ऐंठता है और लगता है इतनी तड़पन सह सकना इस शरीर में रहते शक्य न होगा। फिर भी चूँकि कर्त्तव्य कर्त्तव्य ही है, उस महामानव के रोपित उद्यान के 50 लाख पेड़-पौधों को जिनमें अभी समर्थता नहीं आई है, उन्हें स्नेहसिंचित रखने को अभी जीना भी पड़ेगा और कुछ करते रहना भी पड़ेगा। इसलिए शरीर और मन को सँभाले भी रहना है।

आत्मनियंत्रण की यह परीक्षा मुझे सीता की अग्नि परीक्षा-सी इन दिनों भारी पड़ रही है। शरीर को आग में झोंकना उतना कठिन नहीं, जितना हर घड़ी अंतर की जलन में जलना। समीपता का जितना अमृत पिया, उसका बदला

उस बिछोह विष के रूप में पीना पड़ रहा है। अति के इन दोनों सिरों का तालमेल बिठा सकना और संतुलन कायम रख सकना इन दिनों बहुत भारी पड़ रहा है, फिर भी इतना धैर्य और विवेक तो मिल ही रहा है जिसके आधार पर कंधों पर लदे हए उत्तरदायित्वों का वहन करने के लिए गिर पड़ने की स्थिति में अपने को बचाए रख सकूँ।

गुरुदेव की यों मैं धर्मपत्नी समझी जाती हूँ, पर वस्तुतः उनकी एक सौभाग्यशालिनी शिष्या ही हूँ; उन्हें पति के रूप में नहीं, देवता के रूप में देखा। वस्तुतः वे थे भी इसी योग्य। उन्हें इसके अतिरिक्त और कुछ समझा भी नहीं जा सकता। कोई अपनी गंदी आँखों से उन पर भी गंदगी थोपे यह बात दूसरी है, पर जब भी कोई निष्पक्ष समीक्षक की दृष्टि से उनका अन्वेषण-विश्लेषण करेगा तब उन्हें मनुष्य शरीर में विचरण करने वाला एक देवता ही पाएगा।

मनुष्य में देवत्व का उदय करना यही तो अध्यात्म है। इस तत्त्वज्ञान का व्यावहारिक दर्शन क्या हो सकता है इसका प्रत्यक्ष स्वरूप सर्वसाधारण के सम्मुख प्रस्तुत करने के लिए ही वे आए और जिए, इसी के लिए उनकी हर साँस, हर विचारणा, हर क्रिया और हर उपलब्धि नियोजित रही। उन्हें समझना वस्तुतः आत्मदर्शन को समझने के बराबर ही है। उनका जीवन एक खुली पुस्तक है, जिसे यदि युगगीता का नाम दिया जाए तो उचित ही होगा।

आज के तमसाछन्न वातावरण को हटाने-घटाने के लिए क्या किया जाना चाहिए, उसका उद्घोष-उद्बोधन करना ही उनके क्रियाकलाप का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष था। उन्हीं पृष्ठों का अनावरण उनकी अनुपस्थिति में अपनों से अपनी बात स्तंभ के अंतर्गत करते रहने का मैंने निश्चय किया है।

इस अंक में उनके उस प्रत्यक्ष स्वरूप की थोड़ी-सी चर्चा की गई है, जिससे सर्वसाधारण का मोटेतौर पर परिचय रहा है। उन्हें एक सहृदय, सज्जन और तप-साधनासंलग्न ब्रह्मवेत्ता समझा जाता रहा और लोग यह समझते रहे कि उनकी तप-साधना का लाभ कोई भी बिना हिचक उठा सकता है, सो उठाया भी गया। अभावों, संकटों, उलझनों, अवरोधों से निबटने में सहायता प्राप्त करने के लिए अनेक उनके पास आए। सो न कोई खाली हाथ गया, न निराश। जटिल प्रारब्धों को पूर्णतया समाप्त कर देना तो एकमात्र ईश्वर के हाथ में ही हो सकता है; मनुष्य तो अपनी सामर्थ्य भर दूसरों की सहायता ही कर सकता है। सो उनने इस संदर्भ में सदा असीम सहृदयता और उदारता का ही परिचय दिया।

हर किसी ने पूरा-अधूरा कुछ-न-कुछ सहयोग अवश्य पाया। जिनकी आवश्यकता पहाड़ जितनी थी, पर टीले जैसी सहायता मिलने से संतुष्ट हुए, पर जिसने यह देखा कि उपलब्ध अनुदान भी कितना बड़ा था और उतना भी न मिलने पर कितनी विपत्ति का सामना करना पड़ता, वे उतने से संतुष्ट रहे। चर्चा न करने का प्रतिबंध था, पर मन की बात सदा छिपाए रहना मानसिक दुर्बलता को देखते हुए सब अंशों में संभव नहीं, सो उपलब्ध अनुदानों की चर्चा एक से दूसरे के कानों में पहुँचती रही और इस आकर्षण में उनसे अधिक व्यक्ति उनके पास आते रहे जिसकी संख्या का लेखा-जोखा रखा जाए तो उसे अनुपम एवं अद्भुत ही कहा जा सकता है।

50 लाख तो उनके दीक्षित शिष्य हैं। संपर्क साधने वालों और लाभान्वित होने वालों की संख्या करोड़ों में गिनी जा सकती है। उदार-अनुदानी और संत-तपस्वी के रूप में उन्हें मोटेतौर पर समझा जाता रहा है। कई बार कुपात्रों को सहायता न करने के लिए मैंने कहा तो उनने इतना ही कहा— बार-बार काटने वाले बिच्छू को भी पानी में बहने-डूबने से बचाना संत का धर्म है। अनुचित लाभ उठाने के इच्छुक अपनी आदत से पीछे नहीं हटते, तो मैं ही क्यों अपनी सहायता को सीमाबद्ध करूँ।

तर्क की दृष्टि से उनसे बहस की जा सकती थी, पर जिसके मन में करुणा, ममता और आत्मीयता के अतिरिक्त और कुछ हो ही नहीं, जो सबमें अपनी ही आत्मा समायी देखता हो ऐसे अवधूत की भावगरिमा को चुनौती देने में न तर्क समर्थ हो सकता था, न गुण-अवगुण का विश्लेषण। वस्तुतः वे इन परिधियों से बहुत आगे निकल चुके थे, सो किसी ने पात्र-कुपात्र की चर्चा की भी और समझाने-रोकने का प्रयत्न भी किया तो कुछ परिणाम न निकला।

परिणाम स्पष्ट है, उनकी महानता में तपश्चर्या जितनी सहायक हुई, उससे हजार गुनी प्रभावी थी आंतरिक निर्मलता और निर्बाध उदारता। जीवन-साधना के इन दो पक्षों के आधार पर ही वे गरुड़ की तरह ऊँचे आकाश में उड़ चलने में सफल हो सके।

विश्लेषण करने वाले देखते हैं कि उनकी अधिकतम उपासना 6 घंटे नित्य थी। इतने जप-तप का इतना अधिक प्रभाव नहीं हो सकता, जिससे इतना प्रखर ब्रह्मवर्चस् संगृहीत हो सके और इतने असंख्य अभावग्रस्तों की सहायता संभव हो सके।

दूसरे उनसे भी अधिक कर्मकांडी एवं जप-तप करने वाले मौजूद हैं, पर उनकी उपलब्धियाँ नगण्य ही रहती हैं। फिर गुरुदेव के लिए इतना उपार्जन कैसे संभव हुआ? इस पर उनकी अति निकटवर्ती एवं विनम्र अनुगामिनी होने के नाते इतना ही कह सकती हूँ कि उनने निर्मलता और उदारता की प्रवृत्तियों को विकसित करने में अत्यधिक ध्यान दिया और पुरुषार्थ किया। अपने व्यक्तित्व को उर्वर-क्षेत्र की तरह विकसित करने में यदि इतनी सतर्कता न बरती होती तो संभवत: उनके 24 वर्षों के 24 गायत्री महापुरश्चरण तथा सामान्य समय के जप-तप उतने प्रभावी न हो सके होते, जितने कि देखे और पाए गए।

गुरुदेव चले गए। दूर जाने पर उनका अधिक अन्वेषण-विश्लेषण हम सबके लिए अधिक संभव हो सकेगा। उन्हें गहराई तक समझने का जितना प्रयत्न किया जाएगा, उतना ही अधिक हम अध्यात्म तत्त्वज्ञान का वास्तविक स्वरूप समझ सकने और उसके महान परिणामों को उपलब्ध कर सकने का पथ प्रशस्त कर सकेंगे। ❑

अब्राहम एक गरीब मजदूर का पुत्र था। उसे पढ़ने का बहुत शौक था। उसे कहीं से पता लगा कि उसके शिक्षक एंड्रयू क्रॉफर्ड के पास जॉर्ज वाशिंगटन की जीवनी है। अब्राहम का मन उसको पढ़ने के लिए लालायित हो उठा तो उसने मि. क्रॉफर्ड से पुस्तक उधार देने की प्रार्थना की। मि. क्रॉफर्ड ने उसके पुस्तक प्रेम को देखते हुए वह पुस्तक उसे दे दी। घर पहुँचते ही अब्राहम वह पुस्तक पढ़ने बैठ गया और पढ़ते-पढ़ते ही उसकी आँख लग गई।

जब वह सुबह जागा तो उसका हृदय यह देखकर धक्-सा रह गया कि रात को बारिश की बौछारें आने से पुस्तक खराब हो गई है। वह दुखित हृदय से पुस्तक लेकर मि. क्रॉफर्ड के पास पहुँचा। पुस्तक की दुर्गति देखकर वे अब्राहम पर बरस पड़े और बोले—"तुमने अपनी लापरवाही से इतनी कीमती पुस्तक खराब कर दी, इसीलिए मैं यह पुस्तक किसी को नहीं देता था। अब या तो इसकी कीमत भरो अथवा तीन दिन तक खेत पर काम करो तो यह पुस्तक तुम्हारी हो जाएगी।" पैसे तो अब्राहम के पास नहीं थे, पर उसने तीन दिन तक मि. क्रॉफर्ड के खेत पर जी-तोड़ मेहनत की। परिणामस्वरूप पुस्तक मिलने पर वह खुशी से झूमता हुआ घर पहुँचा और अपने पिता को वचन देता हुआ बोला कि मैं एक दिन वाशिंगटन की तरह बनकर दिखाऊँगा। यही बालक अब्राहम एक दिन अमेरिका का राष्ट्रपति बना।

बच्चों व किशोरों में फैलती स्मार्टफोन की लत

टेक्नोलॉजी के नित नए आविष्कार प्राय: मानवहित के लिए होते रहते हैं, लेकिन जब हम इसका सदुपयोग नहीं कर पाते तो ये वरदान की जगह अभिशाप बन जाते हैं। इंटरनेट, स्मार्टफोन और सोशल मीडिया आदि संचार क्रांति युग के कुछ अभिनव वरदान हैं, जिन्होंने परिस्थितियों की चुनौतियों के बीच जीवन को अधिक सुविधाजनक बनाया है।

कोविड काल की विकट स्थिति को पार करने में इन्होंने निर्णायक भूमिका निभाई थी, लेकिन इनकी लत से जुड़ा चिंताजनक पहलू भी अब सामने आ रहा है। आज इंटरनेट और सोशल मीडिया की लत शहरों से निकलकर कस्बों-गाँवों तक पहुँच चुकी है। हर वर्ष इनके उपयोगकर्त्ताओं की संख्या करोड़ों में पहुँचती जा रही है।

पिछले पाँच वर्षों में डिजिटल माध्यम पर हुए एक शोध अध्ययन के अनुसार—हर वर्ष 20 से 25 प्रतिशत डिजिटल उपयोगकर्त्ता बढ़े हैं। वर्ष 2015 में ग्रामीण क्षेत्रों में केवल 9 प्रतिशत जनसंख्या इंटरनेट का उपयोग कर रही थी, जो वर्ष 2018 में 25 प्रतिशत तक पहुँच गई।

आज इनकी संख्या 56 प्रतिशत बताई जा रही है। एक आकलन के अनुसार, वर्ष 2026 तक देश में इंटरनेट के उपयोगकर्त्ताओं की संख्या एक अरब पार हो जाएगी।

इंटरनेट व सोशल मीडिया के उपयोगकर्त्ताओं की बढ़ती संख्या के साथ इनकी लत के शिकार लोगों की संख्या भी बढ़ती जा रही है, जिनमें बच्चों व किशोरों की संख्या बढी-चढ़ी है।

प्रयागराज के कॉल्विन अस्पताल में चल रहे मोबाइल नशा मुक्ति केंद्र में हर माह सौ से अधिक मामले उपचार के लिए पहुँच रहे हैं। संख्या को देखकर चिकित्सक भी हैरान हैं; क्योंकि कोरोना के पहले माह में दो-चार मामले ही इस तरह के आते थे, लेकिन दूसरी लहर के बाद प्रतिदिन चार से पाँच रोगी उपचार के लिए लाए जा रहे हैं।

इनमें 50 प्रतिशत किशोर हैं तथा शेष में बच्चों से लेकर बुजुर्ग तक शामिल हैं। मालूम हो कि इंटरनेट की लत से ग्रस्त बच्चों-किशोरों की काउंसलिंग के लिए बंगलूरू स्थित निम्हांस (राष्ट्रीय मानसिक जाँच एवं तंत्रिका विज्ञान संस्थान) देश का पहला क्लीनिक है। इसके साथ दिल्ली के एम्स, पुणे और यूपी के तीन जिलों तथा अमृतसर में भी केंद्र प्रारंभ हुए हैं।

निम्हांस के अनुसार—बच्चों को मोबाइल औसतन 10 वर्ष की आयु में मिलता है, इनमें से 12 वर्ष की आयु तक 50 प्रतिशत बच्चे सोशल मीडिया का उपयोग करने लग जाते हैं। हर सप्ताह देश भर में मनोचिकित्सकों के पास सोशल मीडिया की लत से परेशान औसत 10 ऐसे मामले आते हैं, जो 12 वर्ष से भी कम आयु के हैं।

इस तरह शहरों में जहाँ स्मार्टफोन नशामुक्ति केंद्र के रूप में डि-एडिक्शन सेंटर खुल रहे हैं, वहीं गाँवों-कस्बों में भी इसकी आवश्यकता अनुभव हो रही है। समस्या की विकरालता को देखते हुए विशेषज्ञों का तो यहाँ तक मानना है कि प्रत्येक जिले में इंटरनेट नशामुक्ति केंद्र खुलने की आवश्यकता है, जहाँ न मात्र इंटरनेट, बल्कि सभी डिजिटल प्लेटफॉर्म को लेकर परामर्श, निगरानी और उपचार की सुविधा उपलब्ध हो सके और साथ ही हर जिले के सटीक आँकड़े प्राप्त हो सकें।

उपलब्ध आँकड़ों के अनुसार—लगभग 38 प्रतिशत बच्चों के फेसबुक खाते बने हुए हैं, वहीं 24 प्रतिशत बच्चे इंस्टाग्राम पर सक्रिय हैं। राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग की रिपोर्ट के अनुसार—देश में 10 वर्ष से छोटी आयु के बच्चे भी सोशल मीडिया पर सक्रिय हैं।

किशोरों में शॉर्ट विडियोज व यू-ट्यूब का चस्का लग गया है। कुछ तो स्वयं चैनल चला रहे हैं और यह नशा कुछ इस कदर हावी हो रहा है कि वे इसे सहजता से छोड़ने के लिए तैयार नहीं हैं। वास्तव में, लॉकडॉउन के दौरान इंटरनेट, स्मार्टफोन और सोशल मीडिया ऑनलाइन पढ़ाई के अपरिहार्य माध्यम के रूप में उभरकर आए थे, जिसमें बच्चों को इनका खुलकर उपयोग करने का अवसर मिला, लेकिन इनके उपयोग की समीक्षा नहीं हो पाई जिसके अभाव

में बच्चे गुपचुप गेम खेलने, वीडियोज देखने व सोशल मीडिया के आदी हो गए।

माता-पिता व अभिभावकों ने अधिकांशतः इस पर ध्यान नहीं दिया और न ही रोका-टोका; क्योंकि एक तो वे स्वयं ही व्यस्त रहते थे, फिर दूसरा वे नहीं चाहते कि बच्चे उन्हें तंग करें। अब बच्चे इसकी लत का इतना शिकार हो चुके हैं कि टोकने पर रूठकर खाना-पीना तक छोड़ रहे हैं और अतिरेक में आत्मघाती कदम तक उठाने से नहीं चूक रहे। मोबाइल के अत्यधिक उपयोग से मेधावी बच्चों की पढ़ाई बाधित हो रही है, उनके परिणाम बिगड़ रहे हैं। मोबाइल से दूर रखने पर बच्चे अवसाद में पड़ रहे हैं और हिंसक हो रहे हैं।

नोएडा के एक कॉलेज में महँगे मोबाइल फोन की व्यवस्था घरवालों से न होने पर उस कॉलेज की छात्रा ने वीडियो कॉल करके अपनी सारी पुस्तकों को जला दिया। इसी तरह घरवालों के साथ हिंसक एवं अपराधिक घटनाओं की संख्या बढ़ रही है। अतिरेक में बच्चे आत्महत्या तक करने की कोशिश करते देखे जा रहे हैं।

विशेषज्ञों के अनुसार—इन घटनाओं में ऑनलाइन गेम, सोशल मीडिया व इंटरनेट पर घंटों उलझे रहने से बच्चों व किशोरों में हिंसक व्यवहार पनप रहा है। अध्ययन के अनुसार—सोशल मीडिया पर सक्रिय 10 में से 3 बच्चे अवसाद, भय, तनाव, चिंता के साथ चिड़चिड़ेपन के शिकार हैं। किसी का मन पढ़ाई में नहीं लगता, तो कुछ बिना फोन के भोजन तक नहीं कर पाते।

निम्हांस के अनुसार—देश में 73 प्रतिशत बच्चे मोबाइल का उपयोग करते हैं, इनमें से 30 प्रतिशत मनोरोग से पीड़ित हैं। साथ ही लड़कियाँ साइबर बुलिंग का शिकार होकर अवसादग्रस्त हो रही हैं। दिल्ली एम्स में हर शनिवार संचालित क्लीनिक में साइबर बुलिंग के मामले आ रहे हैं। इनमें अधिकांश कॉलेज में पढ़ने वाली छात्राएँ हैं।

ऑनलाइन स्टडी एंड इंटरनेट एडिक्शन—शोध अध्ययन के अनुसार, 50 प्रतिशत से अधिक साइबर बुलिंग के मामले दर्ज नहीं होते; क्योंकि लड़कियाँ अपनी परेशानियाँ साझा नहीं कर पाती हैं और धीरे-धीरे अवसाद से ग्रस्त होने लगती हैं।

एम्स, नई दिल्ली के एक अध्ययन के अनुसार—यहाँ हर माह 15 से 16 बच्चे काउंसलिंग के लिए आते हैं, जिनमें 90 प्रतिशत तक मध्यम या अति गंभीर स्थिति वाले हैं अर्थात लक्षण बीमारी के तीसरे या चौथे चरण जैसे दिखाई दे रहे हैं। ऑनलाइन लत (एडिक्शन) के लक्षण क्या हैं, इसकी जानकारी रखना भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

यदि कोई स्क्रीन के सामने लंबे समय तक चिपका रहता है, तो यह एक बड़ा लक्षण है। साथ में पढ़ाई या किसी काम में मन नहीं लगना, कार्यक्षमता का घटना, चिड़चिड़ापन, नींद न आना, संयम व धैर्य खोना, बात-बात पर गुस्सा आना आदि इस लत के चिंताजनक लक्षण हैं, जिनके पाए जाने पर सचेत होने की आवश्यकता है। एक अध्ययन के अनुसार—छह में से एक सोशल मीडिया का उपयोगकर्त्ता किसी-न-किसी रोग से ग्रस्त होता है। इनमें अवसाद, चिंता के अतिरिक्त उच्च रक्तचाप, एनीमिया, मोटापा, मधुमेह जैसे रोग हो सकते हैं।

दिल्ली एम्स में किए गए एक सर्वेक्षण के आधार पर स्पष्ट हुआ था कि 13.4 प्रतिशत युवा मोबाइल की लत के इस कदर शिकार हो चुके हैं कि उनके आपसी रिश्ते खतरे में हैं व आगे बढ़ने के अवसरों को वे खो चुके हैं अर्थात स्मार्टफोन उनके जीवन में उत्कर्ष व प्रगति का माध्यम होने के बजाय उनके बिखराव व पतन का कारण बन रहा है।

विशेषज्ञों के अनुसार—बच्चों व किशोरों को अवसाद से बाहर निकालने के लिए प्रारंभिक दौर में दवाओं की बहुत कम आवश्यकता पड़ती है। अधिकांश मामले उचित परामर्श (काउंसलिंग) के आधार पर ठीक हो जाते हैं।

इस तरह यहाँ अभिभावकों की भूमिका महत्त्वपूर्ण हो जाती है। मनोरोग विशेषज्ञों के अनुसार—जो बच्चे दिन में चार से छह घंटे तक ऑनलाइन रह रहे हैं, उनमें समय रहते लक्षण पहचानना आवश्यक है, लेकिन अभिभावकों को उन पर अधिक प्रयोग करने की आवश्यकता नहीं है। अनावश्यक हस्तक्षेप से कई बार बच्चों की परेशानी बढ़ती देखी गई है और सुधार के बजाय बिगाड़ अधिक होता है। इनके साथ समझदारी व संवेदनशीलता भरा व्यवहार अपेक्षित रहता है। साथ ही माता-पिता एवं अभिभावकों को बच्चों के लिए स्वयं उदाहरण बनना चाहिए।

विज्ञजनों के अनुसार—अभिभावकों को स्वयं उदाहरण बन बच्चों को प्रेरित करना होगा। यदि वे बच्चों को समय नहीं देते व स्वयं ही मोबाइल से चिपके रहते हैं, तो बच्चों

को कैसे इसके सही उपयोग का परामर्श दे सकते हैं। परिवार में साथ रहने व बच्चों को समय देने पर ही वे एकदूसरे को बेहतर ढंग से समझ सकते हैं व प्रभावी रूप में सहायता कर सकते हैं। अभिभावकों की जागरूकता के साथ उन्हें इंटरनेट की समझ भी विकसित करनी चाहिए। उन्हें पता हो कि बच्चा किस तरह से इसका उपयोग कर रहा है। बच्चों व किशोरों में व्यावहारिक बदलाव के प्रारंभिक लक्षणों के बारे में स्वयं जागरूक हों व उनके उपचार के लिए समय रहते कदम उठाएँ। यदि स्थिति गंभीर हो जाए तो मन:चिकित्सक व डि-एडिक्शन सेंटर की सहायता लें।

चिकित्सकों के अनुसार—छह माह की काउंसलिंग और मन:चिकित्सा से 80 प्रतिशत तक रोगी ठीक हो जाते हैं। अधिक गंभीर स्थिति तक पहुँचे 20 प्रतिशत रोगियों को दवाएँ भी देनी पड़ती हैं। इनका उपचार एक वर्ष तक चलाना पड़ता है। सप्ताह भर सोशल मीडिया से दूर रखने पर भी लत को छुड़ाने में मदद मिलती है, हालाँकि यह बहुत कुछ रोगी की स्थिति पर निर्भर करता है। इस तरह स्मार्टफोन के बढ़ते उपयोग व इससे जुड़ी समस्याओं को लेकर व्यापक स्तर पर जागरूकता समय की माँग है। अपने परिवार के बच्चों, किशोरों व युवाओं की ऑनलाइन आदतों पर ध्यान देने की आवश्यकता है। इससे भी महत्त्वपूर्ण है स्वयं का सकारात्मक उदाहरण प्रस्तुत करने का, जिससे परामर्श का अपेक्षित प्रभाव पड़ सके। ❑

गुजरात में एक प्रसिद्ध वकील रहा करते थे। एक बार वे एक मुकदमा लड़ रहे थे कि गाँव में उनकी पत्नी बीमार हो गई। वे उसकी सेवा करने गाँव पहुँचे कि उन्हीं दिनों उनके मुकदमे की तारीख पड़ गई। एक तरफ उनकी पत्नी का स्वास्थ्य था तो दूसरी ओर उनका मुकदमा। उन्हें असमंजस में देख पत्नी ने कहा—''मेरी चिंता न करें, आप शहर जाएँ। आपके न रहने पर कहीं किसी बेकसूर को सजा न हो जाए।'' वकील साहब दु:खी मन से शहर पहुँचे और जब वे अपने मुवक्किल के पक्ष में जिरह करने खड़े ही हुए थे कि किसी ने उनको एक टेलीग्राम लाकर दिया।

उन्होंने टेलीग्राम पढ़कर अपनी जेब में रख लिया और बहस जारी रखी। अपने सबूतों के आधार पर उन्होंने अपने मुवक्किल को निर्दोष सिद्ध कर दिया, जो कि वह था भी। सभी लोग वकील साहब को बधाई देने पहुँचे और उनसे पूछने लगे—''टेलीग्राम में क्या लिखा था ?'' वकील साहब ने जब वह टेलीग्राम सबको दिखाया तो वे अवाक् रह गए। उसमें उनकी पत्नी की मृत्यु का समाचार था। लोगों ने कहा—''आप अपनी बीमार पत्नी को छोड़कर कैसे आ गए ?'' वकील साहब बोले—''आया तो उसी के आदेश से ही था; क्योंकि वह जानती थी कि बेकसूर को बचाने का कर्त्तव्य सबसे बड़ा धर्म होता है।'' वे वकील और कोई नहीं, सरदार वल्लभ भाई पटेल थे, जो अपने इसी कर्त्तव्यपालन के कारण लौहपुरुष कहलाए।

आत्मदृष्टि से जीवन बनता है उत्सव

एक बार एक शिष्य ने अपने गुरु से बड़ी विनम्रतापूर्वक पूछा—''गुरुजी! कुछ लोग कहते हैं कि जीवन एक संघर्ष है, कुछ अन्य कहते हैं कि जीवन एक खेल है और कुछ कहते हैं कि जीवन एक उत्सव है। इन तीनों में सही कौन है गुरुदेव?'' गुरु ने बड़ी प्रसन्नतापूर्वक कहा—''वत्स! जीवन एक संघर्ष भी है, जीवन एक खेल भी है और जीवन एक उत्सव भी है—ये तीनों ही बातें सही हैं।'' शिष्य ने फिर से पूछा—''गुरुदेव! ये तीनों ही बातें कैसे सत्य हो सकती हैं? यदि जीवन एक संघर्ष है तो खेल कैसे हो सकता है? यदि जीवन एक संघर्ष है तो जीवन उत्सव कैसे हो सकता है? मुझे लगता है कि जीवन या तो संघर्ष हो सकता है या खेल या फिर उत्सव, पर जीवन एक साथ संघर्ष, खेल और उत्सव कैसे हो सकता है? कृपया इसे स्पष्ट करने की कृपा करें गुरुदेव।''

गुरु बोले—''वत्स! जिन्हें जीवन में गुरु नहीं मिला, उनके लिए जीवन एक संघर्ष है। जिन्हें गुरु मिल गया, उनके लिए जीवन एक खेल है और जो लोग गुरु के द्वारा बताए गए मार्ग पर चल पड़ें, उनके लिए जीवन एक उत्सव है। जीवन में संघर्ष भरा हुआ है। व्यक्ति को जीवन में पग-पग पर संघर्ष का सामना करना पड़ता है। वह संघर्ष कभी बाह्य कारणों से, बाह्य परिस्थितियों से उत्पन्न होता है तो कभी मनुष्य की अपनी ही मन:स्थिति के कारण मनुष्य को जीवन में व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है।''

गुरु ने आगे कहा—''संघर्ष माने वह चारों ओर से स्वयं को समस्याओं से घिरा हुआ पाता है। वह उन समस्याओं से बाहर निकल आने को संघर्ष करता हुआ दिखाई पड़ता है। उसे जीवन में कई बार हार का सामना करना पड़ता है। उसे असफलता का सामना करना पड़ता है। सामान्य व्यक्ति हार का सामना करते-करते, असफलता का सामना करते-करते अंदर से टूटने लगता है, बिखरने लगता है। वह हार और असफलता को ही अपनी नियति मानने लगता है।''

गुरु ने समझाया—''वह स्वयं को चारों ओर से हताशा और निराशा के चक्रव्यूह में फँसा हुआ देखकर जीवन की चुनौतियों और संघर्षों के सामने अंतत: घुटने टेक देता है और आत्महत्या जैसे कदम भी उठाने की सोचने लगता है। ऐसा इसलिए हो पाता है; क्योंकि व्यक्ति को जीवन की चुनौतियों और संघर्षों का सामना करना नहीं आता। उसे किसी ऐसे गुरु का सान्निध्य और मार्गदर्शन प्राप्त नहीं हो पाता, जो उसे जीवन की चुनौतियों एवं संघर्षों का सामना करना सिखा सके। अत: जिसे जीवन में गुरु नहीं मिला, गुरु का संरक्षण-मार्गदर्शन नहीं मिला, उसके लिए तो जीवन संघर्ष ही है, जिससे वह बाहर निकल पाने में स्वयं को असक्षम और असमर्थ पाता है, पर जब व्यक्ति को किसी गुरु का मार्गदर्शन प्राप्त हो जाता है, तब उसके लिए जीवन एक खेल की तरह होता है।''

अपनी बात आगे बढ़ाते गुरु ने कहा—''वह जीवन में आई कठिन-से-कठिन चुनौतियों को खेल समझता है। कठिन चुनौतियों और संघर्षों के समक्ष घुटने टेकने के बजाय वह एक योद्धा, खिलाड़ी की तरह उनका बहादुरी और कुशलतापूर्वक सामना करता है। जैसे खेल के मैदान में दौड़ता हुआ, खेलता हुआ खिलाड़ी अपने कोच, प्रशिक्षक, गुरु से सीखे गए खेल की बारीकियों को ध्यान में रखकर खेल खेलता जाता है और खेल के परिणाम को अपने पक्ष में करता जाता है, पर जिन्हें जीवन में कुशल प्रशिक्षक, गुरु नहीं मिल पाए उनके लिए खेल की बारीकियों को समझना और तदनुरूप खेलकर जीत हासिल करना संभव नहीं हो पाता है।

''जैसे समुद्र में आए भीषण तूफान के सामने अकुशल और अप्रशिक्षित नाविक हार मान लेते हैं और अपनी नाव को तूफानों से निकालकर समुद्र में उठती तेज लहरों से निकालकर उसे किनारे लगाने में सफल नहीं हो पाते, पर जो इस विधा में कुशल हैं, पूर्ण प्रशिक्षित हैं, वे उन तूफानों के बीच भी अपनी नाव को तूफानों के पार सकुशल सुरक्षित पहुँचा पाने में सफल होते हैं।''

गुरु ने आगे कहा—"जीवन के संघर्ष भी समुद्र में उठने वाली लहरों की तरह, तूफानों की तरह हैं। जो व्यक्ति अपने गुरु के प्रशिक्षण से पूर्ण प्रशिक्षित है, वह स्वयं को इन तूफानों से पार पाने में सफल होता है, पर हाँ, यहाँ यह समझना भी आवश्यक है कि यदि शिष्य गुरु से मात्र भौतिक सुख, भौतिक उपलब्धि के लिए ही जुड़ा है तो उसे जीवनरूपी खेल में कभी हार का तो कभी जीत का सामना करते रहना होगा। उसे हार-जीत, हर्ष-विषाद, मान-अपमान, आशा-निराशा, हानि-लाभ के द्वंद्वों में रहना ही होगा। उसे उन द्वंद्वों के झूले में झूलते रहना होगा और जब तक वह द्वंद्वों में है, तब तक वह पूर्णतः सुखी नहीं हो सकता। उसे खेल में नहीं जीत पाने की आशंका दुःखी करती ही रहेगी।"

उन्होंने समझाया—"वह जीत में हर्षित होगा तो हार में अति दुःखी। वह जीवनरूपी खेल में सफलता और सम्मान पाकर मदमस्त मतवाले हाथी की तरह स्वयं के साथ-साथ दूसरों को हानि भी पहुँचा सकता है। वह जीवन में जीत-ही-जीत की आशा करेगा, आकांक्षा करेगा, पर हमेशा यह कहाँ संभव है; क्योंकि खेल में हार-जीत लगे ही रहते हैं। जीवन में सुख-दुःख तो आते ही हैं। जीवन में हानि-लाभ तो रहते ही हैं। ऐसी स्थिति में कभी खेल में, संघर्ष में जीतकर भी आगे कहीं हार न जाए इस आशंका से जीत पाकर भी मन दुःखी रहता है।"

गुरु ने अपनी बात आगे बढ़ाई—"भविष्य में हारने या असफलता पाने की आशंका में मन दुःखी रहता है, फिर हार या असफलता में तो मन दुःखी होगा ही। अस्तु जब तक हार-जीत, हानि-लाभ की आशंका से मन दुःखी रहता है तब तक व्यक्ति, खिलाड़ी की तरह खेल का आनंद नहीं उठा पाता, बल्कि वह तो मात्र खेल के परिणाम को लेकर ही चिंतित रहता है।"

वे बोले—"जीवनरूपी संघर्ष और खेल में सफल होने के लिए और जीवन को उत्सव बनाने के लिए, जीवन के हर पल को उत्सव बनाने के लिए व्यक्ति के पास प्रचंड पुरुषार्थ, प्रचंड मनोबल के साथ-साथ जीवन-दृष्टि, आत्मदृष्टि, आत्मबल का होना भी बहुत जरूरी है, तभी जीवन उत्सव बन पाता है। अतः जो गुरु से आत्मदृष्टि, आत्मज्ञान पाने के लिए जुड़ा है, जो गुरु के उपदेश को अपने जीवन में अपनाने के लिए जुड़ा है— तब वह गुरु से मात्र मिलने के लिए नहीं जुड़ा है, तब वह गुरु से भस्म, भभूति, ताबीज पाकर सब कुछ पाने की आशा से नहीं जुड़ा है, बल्कि वह गुरु से ज्ञान पाकर ज्ञान में ही जीने के लिए जुड़ा है। उसके लिए तो उसका जीवन ही उत्सव बन जाता है।"

गुरु ने आगे कहा—"उसके जीवन में संघर्ष तो आते हैं, चुनौतियाँ आती ही हैं, खेल आते हैं, पर वह बिना हार और जीत की चिंता किए हर कर्म को पूरा करता चला जाता है। वह हार और जीत को ईश्वर के चरणों में, गुरु के चरणों में समर्पित करता जाता है। फलस्वरूप वह हार हो या जीत हो, मान हो या अपमान हो, लाभ हो या हानि हो—वह दोनों ही स्थिति में समत्व की स्थिति में ही होता है।"

उन्होंने कहा—"समभाव की स्थिति में ही ऐसा होता है। वह न तो हार और असफलता में टूटकर बिखरता है तथा न ही जीत और सफलता के मद में मतवाला ही होता है। वह हर कर्म को, हर खेल को उसके परिणाम और फल की चिंता किए ही करता है, खेलता है; इसलिए उसे न तो हार और असफलता रुलाते हैं और न ही जीत या सफलता मदहोश करते हैं।"

वे बोले—"उसका तो जीवन का हर खेल, हर कर्म ही—अब सौंप दिया इस जीवन का प्रभु सब भार तुम्हारे चरणों में, अब हार तुम्हारे हाथों में और जीत तुम्हारे हाथों में—के भाव के साथ संपादित होता है। इसलिए उसके जीवन का हर पल ही उत्सव बन जाता है, महोत्सव बन जाता है और जीवन ही क्यों ? उसका मरण भी महोत्सव बन जाता है।"

गुरुदेव से जीवन की ऐसी सुंदर व्याख्या सुन सभी शिष्य बहुत प्रसन्न हुए और तदनुरूप जीवन-दृष्टि, ज्ञानदृष्टि पाकर जीवन को उत्सव सरीखे जीने लगे। ❑

यो वै सामर्थ्ययुक्तस्य नोपकारं करोति वै।
तत्सामर्थ्य भवेद् व्यर्थं परत्र नरकं व्रजेत्॥

जो सामर्थ्य रहते हुए भी किसी का उपकार नहीं करता है, उसकी वह सामर्थ्य व्यर्थ चली जाती है तथा वह नरकगामी होता है।

▶'नारी सशक्तीकरण' वर्ष◀

यथार्थ की कसौटी पर विश्वास

विगत अंक में आपने पढ़ा कि ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान के जरिए ऋषि-मुनि प्रदत्त समग्र उपचार की विभिन्न विधियों और प्रयोगों को विज्ञान की कसौटी पर भी खरा सिद्ध करने की पूज्य गुरुदेव की योजना थी, जिसे एक अवसर पर उन्होंने स्वयं स्पष्ट करते हुए यह बताया कि ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान में जो प्रयोग किए जाने हैं, उनके बारे में किसी को संदेह नहीं होना चाहिए। सन् 1956-57 में गायत्री तपोभूमि में यज्ञ चिकित्सा से संबंधित किए जा चुके परीक्षण का संदर्भ लेते हुए पूज्यवर ने ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान में संपन्न होने जा रहे प्रयोगों के स्वरूप को बड़े व व्यवस्थित ढंग से संपन्न किए जाने की बात कही, जिसके प्रभाव को भविष्य में निश्चित रूप से जनसामान्य द्वारा अनुभव किया जाना संभावित था। पूज्य गुरुदेव द्वारा अनेकों को आर्षपद्धति के माध्यम से कायाकल्प किए जाने के प्रत्यक्षदर्शी पूज्यवर की सामर्थ्य से न केवल भली प्रकार भिज्ञ थे, वरन ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान के माध्यम से उन पद्धतियों की आधुनिक समाज में की जा रही विज्ञानसम्मत प्रतिस्थापना से आने वाले सकारात्मक परिणामों के प्रति आशान्वित एवं आह्लादित भी थे। आइए पढ़ते हैं इसके आगे का विवरण ....

गायत्री मंत्र के चौबीस अक्षरों को बीजमंत्र के रूप में प्रयोग करते हुए चौबीस शक्तियों के आह्वान का विधान है। अनुष्ठान करने वाले अर्चकों से गुरुदेव ने अपने अनुभव और परिचय को गुप्त रखने के लिए कहा था। इस प्रतिबंध अनुशासन के बाद ही उन्हें चौबीस महाशक्तियों-महाविद्याओं, बीज अक्षरों और मंत्र के अक्षरों के साथ देवता और अभिभावक पित्रसत्ता के रहस्य बताए थे।

वैदिक साधनाओं की दिशा निर्दिष्ट करने वाली साधना और शक्तियों के नाम इस प्रकार हैं—आद्यशक्ति, ब्राह्मी, वैष्णवी, शांभवी, वेदमाता, देवमाता, विश्वमाता, ऋतंभरा, मंदाकिनी, अजपा, ऋद्धि और सिद्धि। वैदिक साधनाओं के अलावा तांत्रिक साधनाओं की दिशा देने वाली अधिष्ठात्री शक्तियों में सावित्री, सरस्वती, लक्ष्मी, दुर्गा, कुंडलिनी, प्राणाग्नि, भवानी, भुवनेश्वरी, अन्नपूर्णा, महामाया, पयस्वनी और त्रिपुरा के नाम हैं। चौबीस विग्रहों की प्राणप्रतिष्ठा के बाद गुरुदेव ने चौबीस अर्चकों से कहा कि तुम लोगों को जनसमुदाय के सामने नहीं आना है। एकांत में और अज्ञात स्थान पर ही रहना है। एक ही काम है—हमने अपने जीवन में जिन चौबीस शक्तियों को लोगों तक पहुँचाया है, उसी तरह चुपचाप तपना और गलना है। सर्वथा एकांत और अज्ञान रहने का प्रतिबंध इसलिए कि अपना समय इन साधनाओं के शोध-अनुसंधान में ही लगा सको। अनुभव बाँटते चले तो स्खलन निश्चित है, क्योंकि तुम लोगों के लिए साधना-उपासना की ही मर्यादा तय की गई है।

5 जून, 1979 को गायत्री जयंती के दिन अर्चकों को जब यह निर्देश दिया जा रहा था तो वह संकल्प कराना मात्र था। इसका उद्बोधन और वचन तो दो-ढाई महीने पहले चैत्र नवरात्रों के समय ही ले लिया गया था, जब उनका चुनाव किया गया था। उस संकल्प के साथ साधनाओं के सफल होने का निश्चित आश्वासन था। आश्वासन इसी आधार पर था कि अर्चकों को हमेशा साधनारत ही रहना है। साधना की मर्यादा अनुशासन का अतिक्रमण होते ही उस समय तक अर्जित शक्तियों के क्षीण हो जाने का उस प्रक्रिया का ही हिस्सा बताते हुए एक दुलार भरी चेतावनी भी थी।

प्रज्ञापुराण का वाचन

पुराणखंडी या पंथी शब्द से ध्वनि निकलती है कि उस तरह का व्यक्ति लकीर का फकीर होगा। अठारह पुराण और इतने ही उप तथा औप पुराण किस जमाने में लिखे गए, किसी को नहीं पता। प्रत्येक पुराण के अनुयायियों का मानना है कि भगवान वेदव्यास ने इन पुराणों की रचना वेदों के गुह्य ज्ञान को सुगम बनाने के लिए की। मंत्र, उपनिषद् और आरण्यक आदि के अंश बहुत संक्षेप में होते हैं, कई बार तो एक ही शब्द के। उन्हें समझना विद्वानों के वश की ही बात है। आम आदमी या कम पढ़े-लिखे लोगों को उनसे धर्मप्रेरणा नहीं मिलती। ऐसे व्यक्तियों को कथा-प्रसंगों के माध्यम से ही धर्मतत्त्व समझाया जाता है। पुराणों में वैदिक सिद्धांतों को कथाओं के माध्यम से समझाने की चेष्टा की गई है। जिस जमाने में इनकी रचना हुई तब संबंधित पुराणों के प्रतिपादन सामयिक रहे होंगे। लोगों ने उन्हें स्वीकार भी किया होगा। लेकिन समय इतना बदल गया है कि उन्हीं पुराणों के उल्लेख हास्यास्पद लगते हैं। गुरुदेव ने पुराणों की इस कमी को चिह्नित किया साथ ही यह व्यवस्था भी की कि कथा-प्रसंगों के माध्यम से आज के अनुकूल प्रेरणाएँ उभरें।

मूल पुराणों की संख्या अठारह है। उप और औप पुराणों की संख्या भी अठारह-अठारह है। इस संख्या में नए पुराण शामिल होते रहते हैं और कुछ गणनाओं में वे पुराने पुराणों को हटा भी देते हैं। इसलिए अठारह पुराणों की गणना में संप्रदाय भेद से अलग-अलग पुराणों का उल्लेख मिलता है। उदाहरण के लिए कुछ गणनाओं में देवी भागवत, कल्कि और भविष्य पुराण को एक साथ या अलग-अलग भी अठारह पुराणों में सम्मिलित किया जाता है। कुछ गणनाओं में भागवत, भविष्य, देवी, कल्कि आदि पुराणों को हटा दिया जाता है। यह विवेचन का अलग विषय है और इस पद्धति को स्पष्ट करने के लिए बहुत विस्तार भी चाहिए। संस्कृत और पौराणिक वाङ्मय के विद्वानों के अनुसार कल्कि और भविष्य पुराण सबसे नए ग्रंथ हैं। इनकी रचना या अवतरण का समय भी ढाई सौ से तीन सौ वर्ष पहले तक निश्चित किया गया है।

1975-76 में प्रज्ञा पुराण के अवतरण की पृष्ठभूमि बनने लगी और गुरुदेव ने ब्रह्मवर्चस-साधना सत्र के दौरान कहा कि इसका अध्ययन-पठन आज की समस्याओं का समाधान अत्यंत सुगम-सुबोध ढंग से प्रस्तुत करेगा। जिन दिनों गंभीर साहित्य के अध्ययन चिंतन की परंपरा कमजोर होने लगी, वेद-उपनिषदों की शिक्षा आमजनों की पहुँच से बाहर होती गई, उन दिनों विद्या और बोध की अधिष्ठाता ऋषिसत्ता ने पुराणों का प्रकटीकरण शुरू किया। उद्देश्य यह था कि कथा-कहानियों के माध्यम से लोगों को धर्म-अध्यात्म की शिक्षा दी जाए। इन पुराणों में अलग-अलग कालखंडों में अलग-अलग उपास्य देवों की आराधना का विवेचन है। उस विवेचन के साथ तदनुकूल प्रेरणाएँ भी हैं।

नया युग—बीसवीं-इक्कीसवीं शताब्दी का संधिकाल और उसके बाद का समय ज्ञान, मनीषा तथा बुद्धि-विवेक का समय है। गायत्री युगशक्ति है। वेदों की माता और ज्ञान तथा ऐश्वर्य की अधिष्ठात्री देवी गायत्री की चेतना तथा उसकी प्रेरणा के लिए कोई एक शब्द चुनना हो तो मनीषी विद्वान प्रज्ञा के संबोधन पर ही सहमत होते हैं। 'प्रज्ञा' शब्द का योग की उच्च कक्षा में स्थित बुद्धि-विवेक के लिए उपयोग किया जाता है। बुद्धि जब इतनी निर्मल हो जाती है कि राग-द्वेष उसे प्रभावित नहीं कर पाते और इतनी सूक्ष्म कि वह चेतना के समकक्ष हो जाती है तो उसे प्रज्ञा कहते हैं। उस निर्मल बुद्धि के सामने ज्ञात-अज्ञात रहस्य अपने आप खुलने लगते हैं। उस अवस्था की ओर सामान्य जनों को अथवा हर किसी को सहज ढंग से प्रेरित करने के लिए जिस पुरातन विद्या धारा को प्रकट होना था—गुरुदेव ने उसे प्रज्ञा पुराण नाम दिया।

अठारह खंडों में प्रस्तुत की जा रही इस पुराण शृंखला को प्रज्ञा-उपनिषद् भी कहा गया है। आशय यह कि प्रज्ञा पुराण में पौराणिक शैली-विस्तार और कथा-प्रसंगों के साथ-साथ उपनिषद् शैली का भी समन्वय हुआ है। कथा-प्रसंगों में विस्तार के बाद उसी तत्त्वज्ञान को उपनिषद् की सूत्र शैली में भी लिपिबद्ध किया गया। इस तरह प्रज्ञा पुराण आयोजनों के साथ मनीषियों, बुद्धिजीवियों के लिए भी समान रूप से उपयोगी हुआ।

जिस दिन गुरुदेव ने प्रज्ञा पुराण के अवतरण की घोषणा की, उसके कुछ ही महीनों बाद चार खंडों में वह अवतरित हो गया। गुरुदेव ने आज की समस्याओं का समाधान बताने वाले प्रकरण कथा प्रधान, विचारोत्तेजक और तथ्यों पर आधारित प्रतिपादन चार खंडों में लिखकर रख दिए। इनका विस्तार डेढ़ हजार पृष्ठों से ज्यादा था। साथ ही कहा कि युगदेवता इस पुराण को अठारह खंडों तक भी विस्तारित

कर सकते हैं। कालांतर में पाँचवाँ और छठा खंड भी प्रकाशित हुआ। प्रज्ञा पुराण के बाकी खंड भी गुरुदेव के संकेतों की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान की स्थापना के दिनों में प्रकाशित इस पुराण के पठन-पाठन की परंपरा भी वहीं शुरू हुई। शांतिकुंज और ब्रह्मवर्चस आरण्यक के सात कार्यकर्त्ताओं की एक मंडली बनाई गई। इस मंडली के जिम्मे पुराण के नियमित पाठ का काम सौंपा गया। पहले दिन पाठ शुरू हुआ, शांतिकुंज के एक वरिष्ठ कार्यकर्त्ता महेंद्र शर्मा ने सस्वर गान छेड़ा तो मंडली के बाकी सदस्यों ने भी समवेत गान छेड़ा। पाठ की—प्रज्ञा पुराण के प्रकरणों की व्याख्या शुरू हुई। पहले दिन के पाठ-प्रवचन में समझाया कि मनुष्य ईश्वर का पुत्र है। उसकी गरिमा और महिमा इतनी गहन है कि उसे दु:खी होना ही नहीं चाहिए। फिर भी वह दु:खी रहता है तो आगे आ रही कथाओं के प्रकाश में समझा जा सकता है कि दु:ख का कारण क्या है और उसका निराकरण कैसे किया जा सकता है। यह भी कि पुराण में व्यक्त प्रेरणाओं के अनुसार आचरण करने से मनुष्य में देवत्व का उदय और धरती पर स्वर्ग उतरेगा।

मंडली ने पहली कथा सात दिन में पूरी की। बीच में एक दिन का विश्राम था। फिर कथा सप्ताह का नया सत्र शुरू हुआ। शुरू में पुराण के चार खंड ही आए थे। चार मंडलों के नाम से विभाजित इन खंडों में लोक-कल्याण, महामानव-देवमानव, परिवार और देव संस्कृति के शीर्षक से गायत्री परिवार का—नए युग का जीवन दर्शन विवेचित हुआ था। कथा को यदि दृष्टांतों के माध्यम से समझाने, गाने या पाठ करने का आयोजन किया जाए तो एक महीना या इससे ज्यादा समय भी लग सकता है। लेकिन सामान्य तौर पर यह आयोजन सात-आठ दिन में संपन्न कराया जा सकता है। (क्रमशः)

महान सिख गुरु अर्जुनदेव की पत्नी गंगादेवी का मन निस्संतान होने के कारण खिन्न रहा करता था। गुरु अर्जुनदेव ने उन्हें महान संत बाबाजी से आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए जाने का सुझाव दिया। माता गंगादेवी भाँति-भाँति के व्यंजन बनाकर बाबाजी के पास पहुँचीं। बाबाजी ने सारी शान-शौकत देखी तो समाधि में लीन हो गए।

माता गंगादेवी को निराश लौटना पड़ा। उन्होंने लौटकर सारा विवरण गुरु अर्जुनदेव को सुनाया। गुरु अर्जुनदेव ने माताजी से कहा—"बाबाजी ब्रह्मज्ञानी हैं। ऐसे महापुरुषों के लिए सांसारिक शान-शौकत और दिखावे वाले वैभव का कोई मूल्य नहीं होता। उनका आशीर्वाद पाना है तो आपको सादगी एवं विनम्रता से जाना होगा।"

अगले दिन गंगादेवी ने घर की सादा रोटियाँ लीं, एक बरतन में लस्सी भरी और उन्हें लेकर नंगे पैर बाबाजी से मिलने पैदल चलते हुए पहुँचीं। इस बार उन्हें आता देखकर बाबाजी अपने स्थान से उठे और उनसे बोले—"तू आ गई बेटी! मैं तेरी ही राह देख रहा था। बहुत भूख लगी है। तू मुझे भोजन दे दे।" इसके बाद उन्होंने सहजता से भोजन ग्रहण किया और उसके उपरांत गंगादेवी को प्रतापी पुत्र के होने का आशीर्वाद दिया, जो कालांतर में सत्य सिद्ध हुआ। महापुरुषों को शील और विनम्र प्रिय होता है, बाहरी दिखावा नहीं।

तनाव से रहें दूर, जीवन जिएँ भरपूर

आज के दौर में तनाव जिंदगी का अभिन्न हिस्सा बन चुका है। अमेरिकन वैज्ञानिक हेंस सेली ने सन् 1928 में सबसे पहले स्ट्रेस शब्द का इस्तेमाल किया था। अनुसंधान के द्वारा उन्होंने पाया कि मस्तिष्क में दबी हर प्रेरणा मांसपेशियों और त्वचा में दबाव पैदा करती है। जब तक इसे किसी क्रिया से निकाला नहीं जाता, मांसपेशियों में तनाव बना रहता है। इस तनाव से थकान और अवसाद जन्म लेते हैं, जो धीरे-धीरे जटिल बीमारियों का रूप धारण कर लेते हैं।

आमतौर पर लोग तनाव कम करने के लिए चाय, काफी, चॉकलेट या कोला आदि लेते हैं। इनमें ड्रग की तरह तेजी से असर करने वाले तत्त्व होते हैं। ये तत्त्व शरीर की प्रतिरोधक क्षमता कम करके तनाव पैदा करते हैं। जहर, जहर को मारता है। कैफीन इसी सिद्धांत पर काम करके तनाव कम करती है। यह शरीर में कुछ विषैले तत्त्व पैदा करती है, जो मस्तिष्क के तंतुओं की संवेदनशीलता कम करते हैं।

इसी कारण तनाव कम होने का झूठा आभास होता है और हम दिन-प्रतिदिन इसकी मात्रा बढ़ाने के लिए मजबूर हो जाते हैं। कैफीनरहित दिन बिताकर हम इससे होने वाले तनाव से छुटकारा पा सकते हैं। हम बदलाव महसूस करेंगे। इससे उत्साह, ऊर्जा, अच्छी नींद और मांसपेशियों को लचीला पाएँगे। अगर हम अचानक कैफीन छोड़ते हैं तो माइग्रेन जैसे तेज दरद के शिकार हो सकते हैं। इसलिए कैफीन से छुटकारा पाने का सबसे आसान तरीका अपनी नियमित दिनचर्या से प्रतिदिन एक प्याला कॉफी कम करना है।

हँसी, कुदरत का अनमोल उपहार है। जहाँ दिल खोलकर हँसना रूप को निखारता है, तो वहीं यह तनाव की अचूक दवा भी है। सुबह का स्वागत खुद को दर्पण में मुस्कराते हुए देखकर करें। पूरा दिन उत्साह एवं ताजगी के साथ गुजरेगा। हँसी पर पैसा नहीं लगता है, इसलिए बेखौफ होकर मुस्कराहटों का आदान-प्रदान करें।

कैलिफोर्निया के डाक्टर ली बर्क के मुताबिक हँसी शरीर के इलाज का कुदरती तरीका है। हँसना इम्यून सिस्टम को सक्रिय करता है। इससे प्राकृतिक किलर सेल्स में बढ़ोत्तरी होती है, जो वाइरस से होने वाले रोगों और ट्यूमर सेल्स को नष्ट करते हैं। हँसी दिल का सबसे अच्छा व्यायाम है। यह टी सेल की संख्या में बढ़ोत्तरी करती है। इससे एंटीबॉडी इम्यूनोग्लोब्यूलिन ए की मात्रा बढ़ती है। यह श्वसन नली में होने वाले इंफेक्शन से बचाव करती है।

हँसने से तनाव पैदा करने वाले हॉर्मोंस का स्तर कम होता है। खुलकर हँसना चेहरे और गले की मांसपेशियों के लिए उत्तम व्यायाम है। आज की भाग-दौड़ वाली जिंदगी में इनसान अपनी क्षमता का अधिक-से-अधिक उपयोग कर रहा है। शारीरिक गतिविधियों के कारण घुटनों में लैक्टिक एसिड पैदा होता है। जब शरीर में इसकी मात्रा बहुत बढ़ जाती है तो हम थकान महसूस करते हैं।

यूनिवर्सिटी ऑफ पोर्टस्माउथ की वैज्ञानिक डॉक्टर रॉबिंस एसले के अनुसार—इंटरल्यूकिन-6 नामक अणु मस्तिष्क को धीमा चलने का संकेत भेजते हैं। इसका अर्थ होता है कि अब मांसपेशियों से अतिरिक्त काम नहीं लिया जा सकता है। लंबे समय तक चली शारीरिक गतिविधियों के बाद इंटरल्यूकिन-6 का स्तर सामान्य से 60-100 गुना तक बढ़ जाता है। तब हमें आराम की जरूरत महसूस होती है। सोना तनाव दूर करने का सबसे आसान तरीका है। 8 घंटे की नींद फिर से काम करने के लिए ऊर्जा देती है।

नए शोध के अनुसार काम के व्यस्त क्षणों के बीच थोड़ा-सा विश्राम लेकर मीठी झपकी लेनी चाहिए, ताकि तन-मन तरोताजा होकर फिर काम के लिए तैयार हो जाएँ। कम-से-कम 5 और अधिक-से-अधिक 20 मिनट तक ली गई झपकी जादू के समान असर दिखाती है। यह काम से उबाऊ क्षणों के बीच हमको फूलों पर बिखरी ओस जैसी ताजगी से भर देती है।

▶'नारी सशक्तीकरण' वर्ष◀

क्रूर तानाशाह एडोल्फ हिटलर चित्रकार बनना चाहता था, लेकिन चित्रशाला की प्रवेश परीक्षा में फेल हो गया। उसकी रचनात्मकता का सुख दूसरी ओर मुड़ गया, जिसका परिणाम जगजाहिर है। हम सभी में ऊर्जा की लहरें कुलाचें भरती हैं। उन्हें बहने का सही रास्ता चाहिए।

बागवानी, किताबें पढ़ना, तैरना, संगीत सुनना, चित्र बनाना जैसे अपने मनपसंद शौक को कुछ समय देकर हम तनाव से कोसों दूर रह सकते हैं। शोधकर्त्ता डिबोरा डेनर ने औसतन 22 वर्ष की उम्र वाली 180 ननों की हाथ से लिखी आत्मकथाओं का विश्लेषण किया। उनके संवेदनशील और सकारात्मक पहलुओं की उनके स्वास्थ्य से तुलना की। जिन ननों ने खुशी और आभार जैसे शब्दों को अपनाया था, उन्होंने नकारात्मक भाव प्रकट करने वाली ननों की तुलना में 10 वर्ष ज्यादा बिताए।

इस तरह रचनात्मक गतिविधियों को अपनाकर और पहले बताई गई प्रक्रियाओं का पालन कर हम स्वयं को तनाव से दूर रख सकते हैं एवं एक हँसता-मुस्कराता जीवन जी सकते हैं। ❑

****

किसी नगरसेठ के द्वार पर एक प्रसिद्ध गुरु का शिष्य भिक्षा माँगने पहुँचा। वह जब भिक्षा लेकर लौटने लगा तो वहाँ पिंजरे में कैद तोता उससे बोला—"इस पिंजरे में कैद होने के कारण मैं बहुत व्यथित रहता हूँ। कृपया अपने गुरु से पूछकर मेरी स्वतंत्रता का उपाय बताइए।"

वापस लौटकर शिष्य ने तोते की जिज्ञासा अपने गुरु के सम्मुख रखी। तोते का प्रश्न सुनते ही गुरु समाधि में लीन हो गए और ऐसा लगा, जैसे उन्होंने प्राणों का त्याग ही कर दिया हो। बहुत अवधि तक वे इसी अवस्था में रहे तो शिष्य घबड़ा गया। इसलिए उनके चैतन्य होने पर उसने दोबारा वह प्रश्न पूछना उचित न समझा।

अगले दिन उसने नगरसेठ के यहाँ जाने पर यह सारा विवरण तोते को कह-सुनाया। सारी बात सुनते ही तोता बोला—"आपको बहुत-बहुत धन्यवाद। आज आपने मुझे मेरी मुक्ति का मार्ग दिखा दिया।" ऐसा कहकर तोते ने गहरी साँस ली और प्राण त्याग दिए। यह सारा घटनाक्रम शिष्य के लिए अचरज भरा था। उसने लौटकर पूर्ण विवरण अपने गुरु को बताया और उनसे उसकी जिज्ञासा का निराकरण करने के लिए कहा।

गुरु ने उत्तर दिया—"पुत्र! वह तोता साधारण आत्मा नहीं था। पूर्वकृत कर्मों के कारण उसे पक्षी योनि में जन्म लेना पड़ा, परंतु वह पहले ही साधना की ऊँचाइयों को प्राप्त कर चुका था। आवश्यकता मात्र उसे संकेत देने की थी, जिससे वह मुक्ति को प्राप्त कर सके। मेरे जीवित रहते मृतवत् समाधि प्राप्त करने का संदेश मिलते ही उसे अपने अंदर निहित क्षमता का बोध हो गया और वह योगमार्ग से समाधि को प्राप्त हो गया।" शिष्य की जिज्ञासा का समाधान हो गया।

****

गर्भावस्था पर वैज्ञानिक शोध

नारी जीवन में गर्भावस्था का समय अत्यंत महत्त्वपूर्ण और संवेदनशील होता है। इस अवस्था में अच्छी देख-भाल और स्वस्थ आहार-विहार की आवश्यकता होती है। चूँकि गर्भावस्था कोई बीमारी नहीं, अपितु एक प्राकृतिक प्रक्रिया है, अत: इसके प्रति सहज और सकारात्मक बने रहना चाहिए। गर्भावस्था में हॉर्मोन्स के बदलाव के फलस्वरूप अनेक तरह की शारीरिक और मानसिक समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं। यदि समय पर इस अवस्था का समुचित प्रबंधन व देख-रेख नहीं की जाए तो गर्भावस्था, प्रसवकाल और उसके पश्चात की स्थिति महिला और शिशु, दोनों के लिए कष्टप्रद बन जाती है।

गर्भावस्था में शारीरिक स्तर पर जो समस्याएँ प्राय: सामने आती हैं, वे हैं—उच्च रक्तचाप, मधुमेह, एनीमिया, संक्रमण, अनिद्रा, मोटापा, जी मिचलाना, उलटी आदि। इसी तरह मानसिक और भावनात्मक रूप से चिंता, तनाव, अवसाद, ज्यादा सोचना, उद्वेग, भय और लक्षण दिखाई पड़ते हैं। इन समस्याओं का नकारात्मक प्रभाव महिला और गर्भस्थ शिशु के संपूर्ण स्वास्थ्य पर पड़ता है, साथ ही प्रसवकाल में भी अनेक तरह की जटिलताएँ उत्पन्न होने की संभावना होती है।

गर्भावस्था की इन सभी परेशानियों से बचाव का उपाय यही है कि पौष्टिक आहार, सक्रिय दिनचर्या एवं स्वस्थ-सकारात्मक चिंतन की रीति-नीति को अपनाया जाए। गर्भावस्था से संबंधित समस्याओं की दृष्टि से देव संस्कृति विश्वविद्यालय के योग एवं स्वास्थ्य विभाग के अंतर्गत एक महत्त्वपूर्ण शोधकार्य संपन्न किया गया है। वर्ष 2016 में शोधार्थी राधिका चंद्राकर द्वारा यह शोध-अध्ययन विश्वविद्यालय के श्रद्धेय कुलाधिपति डॉ० प्रणव पण्ड्या जी के विशेष संरक्षण एवं डॉ० कामाख्या कुमार के निर्देशन में पूरा किया गया है।

इस अध्ययन का विषय है—**'अ स्टडी ऑन दि इफेक्ट ऑफ यौगिक-स्पीरिचुअल पैकेज ऑन प्रेगनेन्सी आउटकम्स।'**

वैज्ञानिक रीति से संपन्न किए जाने वाले इस विशिष्ट अध्ययन की प्रयोगात्मक प्रक्रिया के लिए शोधार्थी द्वारा छत्तीसगढ़ प्रांत के शहरी क्षेत्र का चयन किया गया था। वहाँ के जिला महासमुंद से निजी और शासकीय अस्पतालों से प्रयोग हेतु शोधार्थी द्वारा कुल 80 महिलाओं का चयन किया गया, जिनकी उम्र 20 से 30 वर्ष के मध्य थी। प्रयोग प्रारंभ करने से पूर्व सभी चयनित महिलाओं का स्वास्थ्य परीक्षण किया गया। अध्ययन की आवश्यकता के अनुरूप जो उपकरण प्रयुक्त किए गए; वे हैं—सी०एम०आई० प्रश्नोत्तरी (नरेंद्रनाथ सिंह, द्वारिका प्रसाद व संतोष कुमार वर्मा द्वारा निर्मित), पार्टोग्राफ (1954, फ्रेडमेन द्वारा निर्मित) एवं अस्पताल की मरीज पंजिका के आँकड़े।

स्वास्थ्य परीक्षण के उपरांत शोधार्थी द्वारा प्रयोगात्मक समूह की महिलाओं को यौगिक एवं आध्यात्मिक पैकेज में सम्मिलित उपचार-तकनीकों का अभ्यास कराया जाना प्रारंभ किया गया। सर्वप्रथम आध्यात्मिक तकनीक के अंतर्गत पुंसवन संस्कार संपन्न कराया गया। यह भारतीय जीवनपद्धति के सोलह संस्कारों में से तीसरे क्रम का वह संस्कार है, जो गर्भावस्था की तीन से चार माह की अवधि में संपन्न कराया जाता है। एक से डेढ़ घंटे में संपन्न किए जाने वाले पुंसवन संस्कार में वैदिक मंत्रों व यज्ञीय प्रक्रिया में दिव्य आयुर्वेदिक औषधियों के साथ महिला और गर्भस्थ शिशु के समग्र स्वास्थ्य और कल्याण की आध्यात्मिक प्रार्थना सम्मिलित है।

इसके साथ ही माता, शिशु व परिवार से संबंधित उत्तम प्रेरणाएँ, अनुशासन और कर्त्तव्यों को भी इस संस्कार में जोड़ा गया है। शोधार्थी द्वारा अपने प्रयोग में पुंसवन संस्कार संपन्न कराने के पश्चात प्रयोगात्मक को नियमित योगाभ्यास कराया गया। योगाभ्यास में जिन विशिष्ट योग विधियों को सम्मिलित किया गया वे हैं—

1. आसन—ग्रीवासंचालन (5 मिनट), स्कंधचक्रासन (5 मिनट), चक्कीचालासन (5 मिनट) और तितलीआसन (5 मिनट)। 2. प्राणायाम—नाड़ीशोधन प्राणायाम

(5 मिनट)। 3. ओम् उच्चारण (5 मिनट) और योगनिद्रा (15 मिनट)।

इस प्रकार कुल 45 मिनट का योगाभ्यास सप्ताह में छह दिन नियमित कराया गया। इसके साथ ही शोधार्थी ने अस्पताल के रिकॉर्ड से प्रसवकाल संबंधी महत्त्वपूर्ण जानकारी, जैसे—लेबर पेन, लेबर पेन की अवधि, जन्म के समय शिशु का वजन, डिलीवरी टाइप (सामान्य या सिजेरियम) आदि के आँकड़ों का संग्रहण किया। प्रयोग की अवधि समाप्त होने पर शोधार्थी द्वारा परीक्षणों से प्राप्त आँकड़ों एवं अस्पतालों से प्राप्त की गई जानकारी का सांख्यिकीय विश्लेषण करने पर यह पाया गया कि यौगिक-अध्यात्म पैकेज का गर्भावस्था से संबंधित समस्याओं पर सार्थक एवं सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

प्रयोग में सम्मिलित नियंत्रित समूह की महिलाओं की तुलना में प्रयोगात्मक समूह की महिलाओं के चिंतन में सकारात्मकता, चिंता व तनाव में कमी, शारीरिक स्थितियों में संतुलन, शरीर में ऊर्जा-स्फूर्ति और प्रजनन क्षमता के योग्य शारीरिक क्षमताओं का विकास तथा प्रसवकाल की कमी, प्रसव पीड़ा में कमी व स्वस्थ शिशु के जन्म जैसे सकारात्मक परिणाम देखे गए हैं। अत: यह अध्ययन गर्भावस्था की चुनौतियों का कुशलता से प्रबंधन करने की दृष्टि से अत्यंत उपादेयी एवं लाभकारी कहा जा सकता है।

इस शोध अध्ययन के परिणामों में जो सार्थकता एवं सकारात्मकता के पहलू सामने आए हैं, उनकी मुख्य वजह शोधार्थी द्वारा चयनित यौगिक-आध्यात्मिक पैकेज की विशेष तकनीकें रही हैं। योगाभ्यास के स्वास्थ्य लाभ सर्वविदित हैं। गर्भावस्था में चयनित योगाभ्यास शिशु की जन्म तैयारी का सर्वोत्तम उपाय कहा जा सकता है। नियमित यौगिक क्रियाओं के अभ्यास से प्रसवकाल व जन्म की चुनौतियों को सहजता से पूरा किया जाता है और जन्म के पश्चात की शारीरिक अवस्था एवं स्वास्थ्य को भी शीघ्रता से पुन: प्राप्त करने में यह अभ्यास अत्यंत सहायक होता है।

योग से माता और शिशु दोनों के शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक स्वास्थ्य को सुदृढ़ता और संतुलन प्राप्त होता है। इस शोध-अध्ययन में प्रयुक्त योगासन, प्राणायाम व अन्य तकनीकों के सर्वप्रथम गर्भवती महिला को शारीरिक रूप से जो लाभ प्राप्त होते हैं, उन लाभों को शोधार्थी ने अपने प्रयोग के आधार पर वैज्ञानिक रीति से विवेचित किया है। किस प्रकार आसन एवं प्राणायाम का प्रभाव शारीरिक ग्रंथियों, मांसपेशियों पर सकारात्मक प्रभाव उत्पन्न कर प्रसवकाल को आसान बनाता है और मानसिक संबल प्रदान करने में सहायता करता है, इस तथ्य को शोध में तथ्यात्मक रूप से प्रस्तुत किया गया है।

इस योगाभ्यास के परिणामों में यह दरसाया गया है कि माँ और गर्भस्थ शिशु का शरीर समान रूप से प्रसव की सहज अवस्था की तैयारी करते हैं और प्रसव-प्रक्रिया को संपूर्ण रूप से सामंजस्यपूर्ण व सुखद अनुभूति के रूप में एहसास कराने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। मानसिक रूप से गर्भवती महिला योग और ध्यान के सहयोग से प्रसवकाल के लिए स्वयं को तैयार कर पाती है और इस अवस्था के सुखद व आंतरिक प्रसन्नता वाले अनुभवों को प्राप्त करती है।

इसके साथ ही इस काल के मनोभावात्मक परिवर्तन के कारण उत्पन्न चिंता, तनाव, अवसाद, चिड़चिड़ापन, भय आदि को नियंत्रित करने तथा इसके स्थान पर मानसिक शांति, सजगता, निश्चिंतता जैसी क्षमताएँ प्रसवकाल के इस अवसर को जीवन की अविस्मरणीय सुखद स्मृति में परिवर्तित कर देते हैं।

योगाभ्यास में आसन, प्राणायाम, ओम् उच्चारण, योगनिद्रा जैसी विशिष्ट विधियों के साथ-साथ इस अध्ययन में पुंसवन संस्कार के रूप में एक विशिष्ट आध्यात्मिक प्रक्रिया भी समाहित है, जो इस शोध के परिणामों में सार्थकता की महत्त्वपूर्ण कारक है। यह संस्कार गर्भावस्था में महिला एवं शिशु के लिए भौतिक, आत्मिक और आध्यात्मिक वातावरण का निर्माण कर दिव्य संरक्षण की प्राप्ति कराने की भावना से संपन्न कराया जाता है।

भारतीय संस्कृति में इस संस्कार का महत्त्व सुसंतति और उच्चस्तरीय क्षमताओं से युक्त संतान प्राप्त करने की आध्यात्मिक विधि के रूप में सदैव उपस्थित रहा है। शास्त्रों में अभिमन्यु, प्रह्लाद, अष्टावक्र, परीक्षित जैसे अनेक उदाहरणों-दृष्टांतों के माध्यम से इस संस्कार के महत्त्व को समझा जा सकता है। भारतीय जीवन-दृष्टि से पुंसवन संस्कार के द्वारा दो तरह के उद्देश्यों की पूर्ति होती है। प्रथम यह कि गर्भावस्था और शिशु के जन्म तक की अवधि में समग्र स्वास्थ्य, सकारात्मक वातावरण बनाए रखना और इस विशेष अवसर को सहज एवं सुगम बनाना है।

दूसरा उद्देश्य यह कि माता-पिता एवं परिवार को शिशु के जन्म एवं जीवन के प्रति दायित्वबोध कराते हुए उनमें गर्भस्थ शिशु के प्रति सजगता उत्पन्न करना है। इसमें वह सूक्ष्म विज्ञान भी सन्निहित है जिसमें यह कहा जाता है कि माता अपने गर्भस्थ शिशु का जैसा व्यक्तित्व बनाना चाहती है, उसका बीजारोपण उसकी जीवन-चेतना गर्भावस्था की अवधि में ही संभव है।

गर्भावस्था के दौरान माँ अपने जीवन की शुचिता, आहार-विहार की उच्चता और श्रेष्ठतम भावनाओं का अवलंबन करके महान व्यक्तित्व को जन्म देने में समर्थ होती है।

यहाँ यह तथ्य उल्लेखनीय है कि आज के आधुनिक विज्ञान और चिकित्सा के सहयोग से गर्भावस्था को चुनौतीरहित भले ही बनाया जा सकता है और एक स्वस्थ एवं सबल शिशु को जन्म भी दिया जा सकता है, परंतु सही वजन से ही शिशु के जीवन और स्वास्थ्य का मूल्यांकन करना एकांगी है।

शिशु के स्वस्थ शरीर में जिस प्राण-ऊर्जा की, चेतना की, उच्च मानसिक क्षमताओं और गुणों की आवश्यकता होती है, वह सिर्फ आध्यात्मिक प्रक्रियाओं द्वारा ही संभव है।

इस दृष्टि से यह शोध-अध्ययन अत्यंत महत्त्वपूर्ण और उपादेयी है; क्योंकि यह योग और अध्यात्म की संयुक्त तकनीकों के द्वारा गर्भावस्था का समुचित प्रबंधन करने व इस अवस्था के व्यापक महत्त्व व लाभों के प्रति जागरूक बनाने वाली उपादेयी जानकारी को प्रस्तुत करता है। ऐसी जानकारी और सजगता की आवश्यकता जनसमाज में सभी को समान रूप से है। ❑

तीक्ष्ण बुद्धि वाला एक विद्यार्थी सादगीपूर्ण जीवन व्यतीत करता था और कई बार उसके तन पर पर्याप्त वस्त्र भी नहीं होते थे। एक दिन उसके आचार्य ने उससे पूछा—"पुत्र! इतनी सरदी में भी तुमने पर्याप्त वस्त्र नहीं पहन रखे हैं। ठंढ लगने से तुम बीमार हो सकते हो।" इस पर विद्यार्थी ने कहा—"आचार्य! मेरे पास जो थोड़ी धनराशि है, उससे रात्रि-अध्ययन हेतु केवल तेल ही खरीद पाता हूँ। यदि यह भी मैं वस्त्रों पर खरच कर दूँ तो मेरा अध्ययन रुक जाएगा। अन्य वस्तुओं के बिना मेरा काम चल जाएगा, परंतु अध्ययन के बिना तो मेरा जीवन ही व्यर्थ हो जाएगा।"

उसकी बात सुनकर आचार्य मौन हो गए। समय बीतता गया। एक दिन आचार्य ने उससे कहा—"वत्स! मेरी इच्छा है कि तुम्हारे जैसा विद्यार्थी देश की बागडोर सँभाले। इस हेतु तुम भारतीय प्रशासनिक सेवा परीक्षा पास कर उच्च पद को ग्रहण करो, जिसमें तुम्हारी हरसंभव सहायता करूँगा।"

इस पर उस विद्यार्थी ने कहा—"आचार्य! आपकी इस सहृदयता के लिए धन्यवाद, परंतु मेरी आकांक्षा भारतीय शास्त्रों के गहन अध्ययन की है, जिससे मैं अपने जीवन को सार्थकता प्रदान करते हुए विश्वमानवता को इसके अनमोल रत्नों से परिचय करा सकूँ।" यही विद्यार्थी कालांतर में स्वामी रामतीर्थ के नाम से विख्यात हुआ।

परिवार-व्यवस्था का हो संरक्षण

भारतीय संस्कृति में परिवार का विशेष महत्त्व रहा है। यह व्यक्ति व समाज की कड़ी के रूप में सदा से ही प्रधान रहा है। जीवन के चार आश्रमों में विभाजन के समय गृहस्थ आश्रम ही शेष तीन आश्रमों का आधार रहता है। एक सद्गृहस्थ के घर से ही नैष्ठिक ब्रह्मचारी तैयार होते थे, जो गुरुकुल की शोभा बनते थे।

इसी तरह एक सुगढ़ गृहस्थ ही पारिवारिक कर्त्तव्यों के पूरा होने पर वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश कर समाजसेवा के लिए अर्पित होता था और संन्यासियों के भरण-पोषण व संरक्षण का सशक्त आधार गृहस्थ ही रहता था।

इस तरह परिवार तीनों आश्रमों की धुरी के रूप में कार्य करता रहा है व इसको सदा से ही नर-रत्नों की उर्वर खदान के रूप में देखा जाता रहा है, लेकिन आज के भौतिकवादी, बाजारवाद प्रधान युग में संयुक्त परिवार-व्यवस्था की चूलें हिल रही हैं, इसका सदियों पुराना ताना-बाना बिखर रहा है और एकल परिवारों का चलन जोरों पर है। इसके साथ समाज में वह भावनात्मक एवं सांस्कृतिक आधार भी दुर्बल हो रहा है, जिसके आधार पर परिवार एक सशक्त समाज एवं राष्ट्र की नींव रखते थे।

आज परिवार का बिखरता ताना-बाना चिंता का विषय बन चुका है। एक बिखरे एवं संस्कारहीन परिवार के साथ एक सभ्य एवं सशक्त समाज की कल्पना नहीं की जा सकती। वैयक्तिक जीवन में भी पारिवारिक रिश्तों के आधार पर ही व्यक्ति का भाव सिंचन होता है, उसे भावनात्मक पोषण मिलता है तथा व्यक्तित्व का विकास होता है, जो स्वयं में अमूल्य है। इन्हें किसी संसार-बाजार में नहीं खरीदा जा सकता।

माता-पिता, भाई-बहन, नाना-नानी, दादा-दादी, बेटा-बेटी, चाचा-ताऊ, मामा-मामी जैसे संबंधों के रूप में रिश्तों की प्रगाढ़ता पूरे कुटुंब को आपस में जोड़े रहती है। आपस के ये सुमधुर संबंध जीवन की अमूल्य थाती की तरह होते हैं, जो सामान्य पलों में जीवन की धन्यता का एहसास कराते हैं और विकट समय में सशक्त संबल के रूप में व्यक्ति का साथ देते हैं।

परिवार के सही मार्गदर्शन के बल पर व्यक्ति उन्नति के शिखर तक पहुँच जाता है; जबकि परिवार से ऐसा सहयोग न मिल पाने के कारण जीवन में एक भारी शून्यता का भाव व्यक्ति के अंत:करण को जीवनपर्यंत कचोटता रहता है।

इस तरह व्यक्ति के निर्माण में परिवार की भूमिका बहुत महत्त्वपूर्ण रहती है। बचपन में परिवार ही ढाल की तरह शिशु की रक्षा करता है, उसकी हर उचित आवश्यकताओं को पूरा करता है। किशोरावस्था की संवेदनशील स्थिति में परिवार उसकी आंतरिक उथल-पुथल भरी स्थिति को समझते हुए उसे भावनात्मक सहयोग देता है और उसकी समस्याओं के समाधान का प्रयास करता है।

युवावस्था में जीवन के सही निर्णय में परिवार का पूरा सहयोग रहता है व कई विषयों पर सहमत न होते हुए भी उसके हित में समझौता करना व समर्थन करना सिखाता है। इस तरह जीवन के विभिन्न मोड़ पर परिवार के सहयोग से हर तरह की परेशानियों का हल होता है। वस्तुत: जीवन में व्यक्ति उत्कर्ष के जिन शिखरों को छूता है, उसमें परिवारजनों के त्याग-बलिदान, सहयोग-सहकार व शुभकामनाओं का बहुत बड़ा योगदान रहता है।

प्रसिद्ध समाजशास्त्री हेलेन बोसा अपनी पुस्तक 'दि फैमिली' में लिखते हैं कि संसार बिना परिवार के उसी प्रकार होगा, जैसे—सूर्य बादल से ढक सकता है, किंतु उसकी आभा कभी खतम नहीं हो सकती। वैसे ही कुटुंब-व्यवस्था की दीवार कोई अपने आचरण से हिला तो सकता है, परंतु उसका महत्त्व कभी खतम नहीं कर सकता। वस्तुत: परिवार संस्कार है, परिवार परिष्कार है, परिवार संवेदनाओं का आगार है।

परिवार में रहकर ही बच्चों का वह गहनतम भावनात्मक सिंचन होता है, वो सबल संस्कार मिलते हैं, जो ताउम्र उसके जीवन को सँभालते हैं, रक्षाकवच की भाँति जीवन की विकट परिस्थितियों में रक्षा करते हैं और जीवन का मिल-जुलकर यापन करते हुए, दूसरों के लिए भी एक

सार्थक जीवन का प्रेरक दिशा बोध देते हैं। परिवार की आवश्यकता इसलिए पड़ी; क्योंकि पेट-प्रजनन की आवश्यकता पूरी होने के बाद भी उसका जीवन अपूर्ण रहता है।

भावनात्मक सिंचन के बिना अधूरे जीवन में पूर्णता का बोध परिवार में ही मिलता है। परिवार में ही बच्चों का आवश्यक प्रशिक्षण होता है, जो उन्हें भावी जीवन के लिए तैयार करता है। एक नर्सरी की भाँति परिवार बच्चों की प्राथमिक शिक्षा का उद्‌देश्य पूरा करता है, जहाँ कुशल माता-पिता एवं अभिभावक अनगढ़ शिशु को मनचाहा रूप देकर सुगढ़ एवं श्रेष्ठ संस्कारों का बीजारोपण करते हैं।

आज के भौतिकता प्रधान युग में जब स्वार्थ की मात्रा बढ़ी-चढ़ी है, व्यक्तिवाद अपने चरम पर है, परिवारभाव इस विकृति का निराकरण कर सकता है। संसाधन यदि नीतियुक्त नहीं होंगे, तो अर्जित की गई समृद्धि, नाम-ऐश्वर्य तथा सुख-साधन फलदायी नहीं होंगे, जिनके साथ सुख-शांति व परलोक का कल्याण भी होता हो।

यह तभी संभव है, जब व्यक्ति में श्रेष्ठ संस्कार हों, जो नीतियुक्त जीवन को प्राथमिकता देता हो। परिवाररूपी पाठशाला में व्यक्ति इस ढाँचे में ढलता है, जहाँ वह नीति, धर्म व औचित्य को घुट्टी की भाँति पीकर चरित्रवान बनता है, नीतिवान बनता है और सभ्य समाज का निर्माण करता है।

आज के सिकुड़ते संयुक्त परिवार में जब एकल परिवारों की संख्या बढ़ रही है, मेल-जोल और पारस्परिक सामंजस्य के तार ढीले पड़ रहे हैं, संकीर्ण स्वार्थपरता एवं क्षुद्र इक्कड़पन हावी हो रहा है। ऐसे में परिवाररूपी संस्था से परिष्कृत एवं विकसित होकर निकले हर विवेकशील एवं सुगढ़ व्यक्ति का कर्त्तव्य बनता है कि वह परिवारभाव को बनाए रखने में अपनी पुरजोर भूमिका निभाए, जिससे परिवार में परस्पर घनिष्ठता, सहकारिता का भाव सबल बना रह सके तथा शालीनता के साथ स्नेह संस्कार का वातावरण उत्पन्न हो सके, जिसके आधार पर एक सभ्य-सुसंस्कृत समाज की परिकल्पना साकार हो सके। ❑

एक बार साहित्यकार डॉ० जॉनसन से उनके मित्र ने अपनी परेशानियाँ व्यक्त करते हुए कहा—"दिन भर में कुल 24 घंटे हैं, जिनमें से 8 घंटे सोने में, 8 घंटे काम पर और बाकी 8 घंटे शेष कार्यों में निकल जाते हैं तो ऐसे में भगवान का नाम कब लिया जाए?"

डॉ० जॉनसन बोले—"आपके इस तर्क के हिसाब से तो मुझे भूखा मरना पड़ेगा। दुनिया में मात्र एक-चौथाई हिस्सा भूमि है, शेष सब जल है। उसमें भी पहाड़, रेगिस्तान आदि शामिल हैं, कृषियोग्य भूमि तो नगण्य है; जबकि पेट भरने वाले करोड़ों हैं।"

उनके मित्र बोले—"क्यों चिंता करते हैं? दुनिया में सदा से इतने लोग रहे हैं, उनके भोजन का प्रबंध भी सदा से ही रहा है, फिर आपका भी हो जाएगा।" डॉ० जॉनसन बोले—"यदि नगण्य-सी भूमि करोड़ों को भोजन करा सकती है, तो फिर कोई कारण नहीं कि 24 घंटे में आप दो घड़ी भगवान के लिए न निकाल सकें?" यह सुनकर मित्र निरुत्तर हो गए।

भारतीय दर्शन की विश्वव्यापी धमक

भारतीय संस्कृति की ज्ञान-विज्ञान की धारा पूरे विश्व में अपना प्रभाव डालती रही है। अरब और यूनान के प्राचीन चिंतन में भारतीय दर्शन की स्पष्ट छाप मिलती है। यूनानी दूत मेगास्थनीज भारत के दर्शन से गहराई से प्रभावित रहे। ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी में भारत में यात्रा के दौरान उन्होंने देश के अध्यात्म का बड़े विस्तार से वर्णन किया है। उन्होंने भारतवर्ष के उन आध्यात्मिक मनुष्यों का भी वर्णन किया है, जो पर्वतों, मैदानों और कुंजों में निवास करते थे।

मैक्समूलर लिखते हैं कि यूनानियों को जितना अधिक भारत की दार्शनिक प्रवृत्ति ने प्रभावित किया, उतना किसी अन्य ने नहीं। यह प्रवृत्ति रहस्यमय देश को व्याप्त किए हुए प्रतीत होती थी। परवर्तीकाल में हम इस प्रभाव को और सघन एवं व्यापक रूप में देखते हैं। भारतीय विचारों पर सबसे पहले शोध करने वाले यूरोपी विद्वान अलेक्जेंडर थे, जिन्होंने सन् 1768 में अपनी पुस्तक हिस्ट्री ऑफ इंडिया में इस विषय पर विशद प्रकाश डाला।

वारेन हेस्टिंग्स की प्रेरणा से भारतीय साहित्य का ज्ञान अर्जित करने वाले पहले अँगरेज चार्ल्स विल्किन्स थे, जिन्होंने बंगाल में एशियाटिक सोसायटी की स्थापना की। सर विलियम जोन्स भारतीय विचारों के अध्ययन में अग्रणी थे, जो सन् 1783 में कलकत्ता (कोलकाता) उच्च न्यायालय के न्यायाधीश बनकर भारत आए थे।

यहाँ की विचारधारा से प्रभावित होकर उन्होंने कहा— "यह मानवीय प्रतिभा का उर्वर उत्पत्तिस्थल है।" सन् 1784 में स्थापित एशियाटिक सोसायटी के वे आजीवन अध्यक्ष रहे। उन्होंने पहली बार घोषणा की कि संस्कृत—ग्रीक और लैटिन की अपेक्षा अधिक परिष्कृत भाषा है व इन दोनों की जन्मदात्री भी है।

जोन्स के कार्य का सबसे अधिक प्रभाव भारतीय विचारधाराओं के अध्ययन पर पड़ा। जी०टी० गैरेट के शब्दों में, उन्होंने इन विचारों पर जो रुचि जाग्रत की, उससे प्रेरित होकर विद्वान यहाँ के विचारों की खोज में ऐसे उत्साह के साथ प्रवृत्त हुए, जैसे ऑस्ट्रेलिया के स्वर्णक्षेत्रों के प्रति अन्वेषक निकल पड़े हों। ऐसे विद्वानों में हेनरी टामस कोलब्रुक विशिष्ट थे। दर्शन के साथ कोलब्रुक ने भारत के वैज्ञानिक साहित्य पर भी अध्ययन किया, जिससे यूरोपियन विज्ञान व गणितशास्त्र में भारतीय उपलब्धियों का पहली बार प्रकाश पड़ा।

अठारहवीं शताब्दी के प्रारंभ में फ्रांस भी भारतीय विचार-प्रणाली में रुचि लेने लगा था। फ्रांस को भारतीय विचारधारा और इतिहास की जानकारी अरबी, फारसी, चीनी, ग्रीक और लेटिन पुस्तकों से होती रहती थी। इस संदर्भ में फ्रांस के बादशाह के पुस्तकालयाध्यक्ष बिगनन, अन्य विद्वान कालमेत, एनक्वेतिद्यु पेरों आदि का विशेष योगदान रहा। एनक्वेतिद्यु पेरों ने मुगल शहजादे दाराशिकोह के फारसी में अनूदित उपनिषदों का अनुवाद लेटिन भाषा में किया।

इसी क्रम में श्रीमद्भगवद्गीता और उपनिषद् के अनुवाद के साथ भारतीय दर्शन के मूल ग्रंथों के पाठ उपलब्ध हो गए। लियोनार्ड दि शेजी व उनके शिष्यों ने भी भारतीय विचारों के अध्ययन व प्रसार में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। यूजीन बरनाफ व मैक्समूलर ने इस शृंखला में कार्य को और गति दी। इसी बीच सन् 1822 में सोशियट एशिएटिक संस्था की स्थापना पेरिस में हुई, जिसके कारण [illegible] से विद्वान भारतीय दर्शन में रुचि लेने लगे। जिसमें बरनाफ के सहकर्मी बार्थेलेमि दि संत हेलारी भी थे, जिन्होंने भारतीय दर्शन की न्याय व सांख्य शाखाओं में महत्त्वपूर्ण अध्ययन प्रकाशित किए।

सन् 1868 में इकोल दे हांत एत्यूदे नाम से एक नया अध्ययन केंद्र खुल गया, जिसमें आगस्त बार्थ और एवेल बरगाईन और एमिली सेनार्त ने ऋग्वेद पर विशद अध्ययन किया, जिसमें बरगाईन की प्रसिद्ध पुस्तक दि वैदिक रिलीजन एकॉर्डिंग टू दि हिम्स ऑफ ऋग्वेद उल्लेखनीय है। इसके बाद जर्मनों ने संस्कृत और भारतीय दर्शन को अपनाया; जबकि उनके ब्रिटेन और फ्रांस की तरह भारत से कोई राजनीतिक संबंध नहीं थे।

सन् 1808 में फ्रेडरिक श्लेगेल ने भारतीय भाषा व दर्शन पर उबेर डाइ स्प्रेशे एंड विशिट दर इन्देर नामक पुस्तक लिखी और वे जर्मनी में भारतीय विचारधारा के संस्थापक बन गए। उनकी स्पष्ट घोषणा थी कि विश्व चिंतन का सही इतिहास भारतीय चिंतन के बिना नहीं लिखा जा सकता। उनका भाई विल्हेम वाल श्लेगेल, उनसे भी अधिक सक्रिय रूप में भारतीय विचारों पर अध्ययन करने वाला सिद्ध हुआ। उनका श्रीमद्भगवद्गीता का लेटिन अनुवाद सहित संपादित कार्य उल्लेखनीय है।

यूरोप की बौद्धिक और सांस्कृतिक उन्नति पर भारतीय दर्शन व चिंतन का क्या प्रभाव पड़ा, इसका लेखा-जोखा करते हुए मैकडोनल लिखते हैं कि नवजागरण के बाद विश्व के सांस्कृतिक मंच पर यदि कोई सबसे महत्त्वपूर्ण घटना मानी जा सकती है, तो वह है अठारहवीं सदी के उत्तरार्द्ध में हुई संस्कृत साहित्य की जानकारी। वास्तव में पुनर्जाग्रत यूरोप के बौद्धिक जीवन पर भारतीय विचारधारा की इतनी गहरी छाप पड़ी है कि उसके प्रमाण यत्र-तत्र सर्वत्र बिखरे मिल जाते हैं। यूरोप में भारतीय दर्शन और साहित्य का सबसे अच्छा स्वागत जर्मनी में हुआ।

वहाँ के विद्वान जोहान गोटफ्रेड हर्डर ने सन् 1787 में प्रकाशित अपनी मुख्य कृति आइडियाज ऑन ए फिलासफी ऑफ दि हिस्ट्री ऑफ मैनकाइन्ड में लिखा है कि मनुष्य जाति के उद्गम की खोज भारत में करनी चाहिए, जहाँ सरलता, शक्ति और विनय जैसे सद्गुणों के साथ बुद्धि ने सर्वप्रथम स्वरूप ग्रहण किया। उसकी समता करने को ह... यूरोपीय जगत् की जड़ दार्शनिकता में कोई भी वस्तु नहीं है। इसी तरह हर्डर के मित्र और प्रख्यात कवि जोहान वुल्फगाँग वानगेटे ने अपने चिंतन व जीवन में भारतीय साहित्य के प्रभाव को स्वीकारा है।

श्लेगेल बंधु भी भारतीय दर्शन से गहराई से प्रभावित थे। उनके उद्गार थे कि वे प्रत्येक धर्मान्वेषी को यही परामर्श देंगे कि जिस प्रकार कला का अध्ययन करने के लिए इटली जाना आवश्यक है, उसी प्रकार धर्म, दर्शन के लिए भारत जाना चाहिए। वहाँ कुछ ऐसे धर्म के अंश अवश्य मिलेंगे, जिन्हें देखने के लिए यूरोप में भटकना व्यर्थ है। श्लेगेल के भगवद्गीता संस्करण से प्रभावित होकर विल्हेम वॉन हमबोल्ट ने लिखा था कि यह वह गंभीरतम एवं उत्कृष्टतम ज्ञान है, जिस पर संसार गर्व कर सकता है।

उन्होंने आगे कहा—मैं परमात्मा को जीवन प्रदान करने के लिए धन्यवादी हूँ कि मैं गीता का अध्ययन कर सका। इमैनुअल कांट, पहले जर्मन दार्शनिक थे, जिन्होंने अपने चिंतन में भारतीय प्रभाव को स्वीकारा। कांट द्वारा प्रतिपादित दिक् और काल के मध्य प्राकृतिक जगत् और उससे परे अगम्य मूल वस्तु का भेद बहुत कुछ मायावाद के समान है। कांट द्वारा निरूपित निष्काम नियोग सिद्धांत का प्रतिरूप भारतीय दर्शन में है।

इसी तरह कांट के उत्तराधिकारी जेजी फिक्टे ने अपनी पुस्तक हिन्ट्स फॉर ए ब्लेस्ड लाइफ में अद्वैतवाद से मिलते-जुलते अनुच्छेद सम्मिलित किए। आर्थर शोपनहावर भारतीय दर्शन से अत्यधिक प्रभावित थे, उनके शब्दों में—यदि पाठक ने मूल भारतीय ज्ञान प्राप्त करके उसको समझ लिया है, तो उसने मेरे कथन को सुनने की योग्यता प्राप्त कर ली है।

शोपनहावर औपनिषदिक दर्शन को मानव बुद्धि की सर्वश्रेष्ठ उपज घोषित करते हैं। उनके विचार में, भारतीय चिंतन और दर्शन अवश्य ही यूरोपीय ज्ञान और दर्शन में गंभीर परिवर्तन ले आएगा। वे भारतीयों को यूरोपियनों की अपेक्षा अधिक गंभीर विचारक मानते थे, क्योंकि वे जगत् को आंतरिक एवं सहजानुभूति कहकर उसकी व्याख्या करते हैं और यूरोपीय विचारकों की तरह बाह्य और बुद्धिगम्य नहीं मानते।

इसी तरह दूसरे जर्मन दार्शनिक कार्ल क्रिश्चियन फ्रेडरिक ब्रासे ने भी भारतीय दर्शन की मुक्तकंठ से प्रशंसा की है। यूरोपियन दर्शन के ज्ञाता पाल डायसन वेदांत दर्शन से अत्यधिक प्रभावित थे। उन्होंने वेदांत सहित उपनिषदों के मूलपाठ को जर्मनी में अनुवाद करके यूरोपियन विद्वानों के लिए सुलभ कर दिया। वे वेदांत को शाश्वत सत्य की खोज में मानवता की महान उपलब्धि बताते हैं।

भारत से दूर-दराज का संबंध रखने वाले देशों में भी भारतीय चिंतन की प्रतिध्वनियाँ सुनाई देती हैं, जैसे रोमानिया के महाकवि मिहाई एमिनेस्क्यू की कविताओं में वैदिक दर्शन की छाप मिलती है। उनकी कविताओं में कितने ही अंश संस्कृत मूल के रूपांतर जान पड़ते हैं। रूस के पूर्वी विस्तार से बहुत पहले ही रूसी चैदेव ने सन् 1840 में कह दिया था कि हम पूर्व की लाड़ली संतान हैं। हम सब तरह पूर्व से संबद्ध हैं, हमने अपने विश्वास, नियम और गुण वहाँ से प्राप्त किए हैं।

लियो टॉल्स्टाय भारतीय दर्शन व अध्यात्म से बहुत प्रभावित रहे। प्राचीन भारतीय साहित्य पर मैक्समूलर की सैक्रड बुक्स ऑफ दि ईस्ट ग्रंथमाला और बाद में स्वामी विवेकानंद के भाषणों ने उन्हें बहुत प्रभावित किया। इसके साथ वे उपनिषद्, गीता, तमिल ग्रंथ कुराल आदि से भी प्रभावित रहे। यूरोप की तरह सुदूर अमेरिका भी भारतीय दर्शन से प्रभावित रहा। इमर्सन व उनके शिष्य हेनरी डेविड थोरो के विचारों एवं कृतियों में इस प्रभाव के दिग्दर्शन किए जा सकते हैं।

इमर्सन भारतीय दर्शन के पुनर्जन्म सिद्धांत से विशेष रूप से आकर्षित हुए। उन्हीं के शब्दों में, तब मैंने संसार का रहस्य जान लिया कि सभी पदार्थ नित्य हैं, कोई भी मरता नहीं है, केवल कुछ समय के लिए आँखों से ओझल हो जाता है और बाद में पुन: लौट आता है। इसी तरह थोरो की पुस्तक वाल्डेन में भारतीय जीवन दर्शन और भगवद्गीता का विशेष उल्लेख मिलता है, जो उनके कथन से स्पष्ट प्रतिध्वनित होता है, जब वे लिखते हैं कि भारतीय दर्शन से मेरा इतना प्रेम है तो मेरे लिए चावल का आहार ही उपयुक्त है।

अमेरिकी बौद्धिक स्वतंत्रता के नेता वाल्ट व्हिटमैन भी भारतीय चिंतन से प्रभावित रहे। इस संदर्भ में उनकी सबसे महत्त्वपूर्ण कविता पैसेज टू इंडिया में उन्होंने भाव व्यक्त किए कि मनुष्य की आत्मा और विश्वात्मा एक ही हैं।

19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में स्वामी विवेकानंद ने विश्व में जो भारतीय दर्शन व अध्यात्म की पताका फहराई, उसने भी पश्चिम का ध्यान आकर्षित किया। उनसे प्रभावित होने वालों में नोबेल पुरस्कार विजेता रोम्या रोलां भी थे। रामकृष्ण परमहंस के जीवन चरित की भूमिका में उनके उद्गार थे कि मैं यूरोप में नए शरद का ऐसा फल लाया हूँ, जिससे यहाँ के लोग अभी तक अपरिचित हैं। यह भारत की स्वरलहरी में आत्मा का नया संदेश है, जिसका नाम रामकृष्ण है। रोम्या रोलां के अतिरिक्त विलियम बटलर, यीट्स, टीएस इलियट, एडवर्ड कारपेन्टर, हैवलॉक, ऐलिस, अल्डुअस हक्सले, डीएच लारेंस आदि के विचारों में भारतीय दर्शन के प्रभाव को प्रत्यक्ष अनुभव किया जा सकता है।

इसी क्रम में 20वीं शताब्दी में महायोगी श्रीअरविंद, महर्षि रमण सहित तमाम आध्यात्मिक विभूतियाँ विश्वस्तर की मेधा को भारतीय दर्शन व अध्यात्म के प्रति आकर्षित करती हैं। युगऋषि पं० श्रीराम शर्मा आचार्य इस शृंखला की एक अभिनव कड़ी हैं, जिनका वैज्ञानिक अध्यात्म का व्यावहारिक, प्रगतिशील एवं सर्वांगीण जीवन दर्शन सबका ध्यान आकर्षित करता है, जिसमें हर स्तर पर अस्तित्व की समस्याओं के समाधान निहित हैं। उनके शिष्य होने के नाते हमारा पावन कर्त्तव्य बनता है कि हम उनसे अधिक-से-अधिक परिचित हों व उनके साहित्य के अध्ययन के लिए लोगों को प्रेरित करें। ❑

ज्ञानयज्ञ के दो पहलू हैं—विचार पक्ष और क्रिया पक्ष। दोनों का महत्त्व एकदूसरे से बढ़कर है। विचारहीन क्रिया और क्रियाहीन विचार, दोनों को विडंबनामात्र कहा जाएगा। नवनिर्माण की पुण्यप्रक्रिया विवेक के जागरण और सत्प्रवृत्तियों के अभिवर्द्धन पर निर्भर है। नए युग का महल इन्हीं दोनों को ईंट-चूना मानकर चुना जाएगा। इसलिए दोनों पक्षों को प्रखरता से भर देने वाले अपने दो कार्यक्रम प्रस्तुत हैं और चुनौती देते हैं कि हमारे लेखों और प्रवचनों का सान्निध्य और संपर्क का प्रभाव जिन पर पड़ा हो, वे आगे आएँ और जो कहा जा रहा है, उसे अपनाएँ।

—परमपूज्य गुरुदेव

शास्त्रविरुद्ध है दंभयुक्त घोर तप

(श्रीमद्भगवद्गीता के श्रद्धात्रयविभागयोग नामक सत्रहवें अध्याय की पाँचवीं किस्त)

[श्रीमद्भगवद्गीता के सत्रहवें अध्याय के चौथे श्लोक पर चर्चा इससे पूर्व की किस्त में की गई थी। इस श्लोक में भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि सात्त्विक मनुष्य देवताओं का पूजन करते हैं, राजसी मनुष्य यक्षों तथा राक्षसों का और दूसरे वो तामसी मनुष्य हैं, जो प्रेतों तथा भूतगणों का पूजन करते हैं। ये एक महत्त्वपूर्ण वचन है और इसके भाव को पिछले श्लोक की निरंतरता में अच्छे से समझा जा सकता है। पिछले श्लोक में श्रीभगवान ने कहा कि मनुष्य श्रद्धा प्रधान है और उसकी श्रद्धा उसके अंतःकरण के अनुरूप होती है। मनुष्य के अंतःकरण में जिस तरह के गुण होते हैं, उसी तरह की श्रद्धा जन्म लेती है और जैसी श्रद्धा होती है, वैसी ही हमारी साधना की दिशा हो जाती है। भगवान कहते हैं कि जिनके भीतर सतोगुण की प्रधानता है, ऐसे मनुष्य ईश्वरीय शक्तियों के प्रति अपनी श्रद्धा को केंद्रित करते हैं; क्योंकि साधना एक तरह से समान भाव वाली शक्तियों का एकदूसरे के प्रति आकर्षण है। इसीलिए श्रीभगवान कहते हैं कि 'यजन्ते सात्त्विका देवान्'—अर्थात सात्त्विकी विचारधारा वाले, सात्त्विक अंतःकरण वाले, सतोगुणी श्रद्धा वाले व्यक्ति देवताओं का पूजन करते हैं और देवशक्तियाँ भी ऐसे ही भक्तों की ओर आकर्षित भी होती हैं।

इसके बाद भगवान कहते हैं कि जिनकी कामनाएँ सांसारिक होती हैं—घर, संपत्ति, जायदाद, संपदा, इस ओर वे आकर्षित होते हैं, ऐसे व्यक्तित्व अपनी कामनापूर्ति के लिए यक्षों एवं राक्षसों का पूजन करते हैं। यक्षों में कुवेर का नाम प्रसिद्ध है। उन्होंने स्वर्णनगरी लंका का निर्माण किया था। स्पष्ट है कि वैसी कामना रखने वाले लोग, जिनके हृदय में आकांक्षा सांसारिक सफलता की है—वे यक्षों तथा राक्षसों की ओर आकर्षित होते हैं और उनकी पूजा-अर्चना करते हैं। इसके बाद भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि तामसी प्रकृति के मनुष्य भूत-प्रेतों का पूजन करते हैं। इस तरह से जिस व्यक्ति की जैसी श्रद्धा होती है, जिस तरह की भावना से उसका अंतःकरण सिक्त होता है—वह उसी तरह की शक्तियों की पूजा-उपासना करता है।]

अब श्रीभगवान कहते हैं कि

अशास्त्रविहितं घोरं तप्यन्ते ये तपो जनाः।
दम्भाहङ्कारसंयुक्ताः कामरागबलान्विता॥ *5*॥

शब्दविग्रह—अशास्त्रविहितम्, घोरम्, तप्यन्ते, ये, तपः, जनाः, दम्भाहङ्कारसंयुक्ताः, कामरागबलान्विताः॥

शब्दार्थ—जो (**ये**), मनुष्य (**जनाः**), शास्त्रविधि से रहित (केवल मनः कल्पित) (**अशास्त्रविहितम्**), घोर (**घोरम्**), तप को (**तपः**), तपते हैं (तथा) (**तप्यन्ते**), दंभ और अहंकार से युक्त (एवं) (**दम्भाहङ्कारसंयुक्ताः**) कामना, आसक्ति और बल के अभिमान से भी युक्त हैं (**कामरागबलान्विताः**)।

कर्शयन्तः शरीरस्थं भूतग्राममचेतसः।
मां चैवान्तः शरीरस्थं तान्विद्ध्यासुरनिश्चयान्॥ *6*॥

शब्दविग्रह—कर्शयन्तः, शरीरस्थम्, भूतग्रामम्, अचेतसः, माम्, च, एव, अन्तःशरीरस्थम्, तान्, विद्धि, आसुरनिश्चयान्।

शब्दार्थ—शरीर रूप से स्थित (**शरीरस्थम्**), भूत-समुदाय को (**भूतग्रामम्**), और (**च**), अंतःकरण में स्थित

(**अन्तःशरीरस्थम्**), मुझ परमात्मा को (**माम्**), भी (**एव**), कृश करने वाले हैं (**कर्शयन्तः**), उन (**तान्**), अज्ञानियों को (तू) (**अचेतसः**), आसुर-स्वभाव वाले (**आसुरनिश्चयान्**), जान (**विद्धि**)।

अर्थात जो मनुष्य शास्त्रविधि से रहित, घोर तप करते हैं, जो दंभ और अहंकार से अच्छी तरह से युक्त हैं, जो भोग-पदार्थ, आसक्ति और हठ से युक्त हैं, जो शरीर में स्थित पाँच भूतों को अर्थात पांचभौतिक शरीर को तथा अंतःकरण में स्थित मुझ परमात्मा को भी कृश करने वाले हैं, उन अज्ञानियों को तू आसुरी निष्ठा वाला समझ।

यह एक अत्यंत ही महत्त्वपूर्ण वचन है; क्योंकि यहाँ भगवान कह रहे हैं कि ऐसे भी व्यक्तित्व होते हैं, जो शास्त्रीय विधि से, संस्कारवान विधि से रहित होते हैं, परंतु तब भी घोर तप में निरत रहते हैं; क्योंकि उनकी अभिरुचि शक्ति संग्रह में होती है। न तो वे स्वयं ईश्वरीय व्यवस्था को मानते हैं और न ही यदि कोई दूसरा उसका पालन करना चाहता है तो वे उसे करने देते हैं।

पौराणिक आख्यानों में ऐसे एक नहीं, सहस्रों उदाहरण वर्णित हैं। रावण, महिषासुर, शुंभ, निशुंभ, हिरण्याक्ष, हिरण्यकशिपु से लेकर भस्मासुर तक ने शक्ति के अर्जन के लिए तप को ही तो माध्यम बनाया था। रावण जब शक्ति का संग्रह करने के बाद स्वयं त्रिलोक का स्वामी बन बैठा तो उसके बाद उसने दैवी व्यवस्था को मानने से इनकार ही कर दिया। न तो वह स्वयं मानता था और न उसके राज्य में कोई और भगवान का नाम ले तो वह उसे उसका पालन करने देता था। इसीलिए उसने विभीषण को, मंदोदरी को अपशब्द कहे। विभीषण जो उसका भाई था, उसको तो उसने लात मारकर राज्य से निकाल दिया था।

इसी तरह से हिरण्यकशिपु की प्रह्लाद के प्रति कुत्सित बुद्धि का कारण ही यह था कि प्रह्लाद हिरण्यकशिपु को न मानकर भगवान को मानता था। इसीलिए श्रीभगवान कहते हैं कि ऐसे व्यक्ति करते तो घोर तप हैं—'**घोरं तप्यन्ते ये तपो जनाः**' परंतु वो तप शास्त्रविहित न होकर शास्त्रविरुद्ध होता है—'**अशास्त्रविहितं**' क्योंकि उनका भाव तामसिक होता है और उद्देश्य मात्र शक्ति का अर्जन करना और फिर उस शक्ति का उपयोग अहंकार के प्रदर्शन के लिए करना होता है।

निश्चित रूप से जो घोर तप करेगा, वो दो ही कारणों से ऐसा कर सकेगा या तो अपने अहंकार का विसर्जन करके—जो पथ समर्पण, विलय, विसर्जन का है अथवा अपने दंभ, अहंकार को भरकर के—जो पथ फिर दंभ, अहंकार से भरा होने के कारण जिद व हठ का हो जाता है। जैसे कुछ बच्चे अपनी इच्छा इसलिए पूरी करवा लेते हैं; क्योंकि वो जिद्दी, हठी होते हैं, परंतु कुछ बच्चे इतने अबोध, सरल व निष्कपट होते हैं कि माता-पिता स्वयं उनकी इच्छा पूर्ण करने के लिए लालायित होते हैं।

श्रीभगवान यहाँ आसुरी निष्ठा वाले व्यक्तियों की चर्चा कर रहे हैं। वे कहते हैं कि '**आसुर निश्चयान्**' आसुरी निष्ठावाले व्यक्ति '**दंभाहंकार संयुक्ताः**'—दंभ एवं अहंकार से युक्त होते हैं। उनके लिए तपस्या भी अहंकार के प्रदर्शन का माध्यम बन जाती है।

दूसरा एक व्रत रखे तो वो तीन रखकर अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करना चाहते हैं। किसी ने एक चांद्रायण व्रत रखा तो ये चार रखकर अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करना चाहते हैं; क्योंकि उनकी तपस्या का उद्देश्य दुराग्रह है, जिसे श्रीभगवान काम व राग के बल से जन्मा मानते हैं और कहते हैं कि '**कामरागबलान्विताः**'।

ऋतस्य पंथा अनु। —*सामवेद*

ज्ञानी सत्य मार्ग का अनुसरण करते हैं।

जो भी वे करते हैं, उसके पीछे का उद्देश्य राग व काम की आपूर्ति ही होता है, इसीलिए उनकी तपस्या की उग्रता भावनाओं की श्रेष्ठता से नहीं, बल्कि शरीर को कृशकाय बनाने से तय होती है। श्रीभगवान कहते हैं '**कर्शयन्तः शरीर एवं भूतग्रामम्**'—अर्थात वे शरीर में स्थित पंचभूतों को कृश करते हैं, उनको पोषित नहीं करते, बल्कि उनको कृश करते हैं, सुखाते हैं, कष्ट देते हैं और इसी को तप समझते हैं। बहुत लंबे समय तक भूखे रहना, काँटों पर लेटना, एक हाथ ऊपर रख लेना, एक पैर पर खड़े रहना, किसी भी भाँति मन व इंद्रियों को कष्ट पहुँचाना, उन्हें कृश करना, उनके लिए यही तप का उद्देश्य होता है। ऐसे व्यक्तियों को श्रीभगवान आसुरी निष्ठा वाला व्यक्तित्व मानते हैं और उनकी तपस्या को शास्त्रविरुद्ध ठहराते हैं। (क्रमशः)

युगतीर्थ शांतिकुंज हरिद्वार

बहुमूल्य मानव जीवन की समझ एक बड़ी उपलब्धि मानी गई है, जिसके आधार पर व्यक्ति अपने वास्तविक स्वरूप के बोध के साथ जीवन की संभावनाओं को साकार करते हुए जीवन लक्ष्य को पा जाता है।

ऐसी व्यवस्था भारतीय संस्कृति के सनातन प्रवाह में आदिकाल से रही है, जिसके सूत्रधार रहे हैं, मानव प्रकृति के मर्मज्ञ ऋषि, दिव्यता के अंशधर देवपुरुष, महामानव व साक्षात् ईश्वरस्वरूप अवतारी सत्ताएँ, जिन्होंने संस्कारों के महत्त्व को समझा व जीवन के विभिन्न स्तर पर इनकी व्यवस्था जुटाई।

भारतीय संस्कृति में संस्कारों की यह व्यवस्था एक विशिष्ट उपलब्धि है, जिसके बल पर सहस्राब्दियों के कालक्रम में परिस्थितियों के अनगिनत थपेड़े खाते हुए भी देव संस्कृति की सत्ता अक्षुण्ण बनी रही है, जबकि इसके सामने न जाने कितनी सभ्यताएँ-संस्कृतियाँ आईं और काल के गर्भ में समा गईं।

विशिष्ट संस्कारों की परंपरा का इस संदर्भ में विशेष योगदान रहा, जो पारिवारिक एवं सामाजिक स्तर पर समूह मन को एक आदर्श साँचे में ढालते हुए व्यक्ति को सर्वांगीण उत्कर्ष के मार्ग पर प्रेरित करती रही।

इस युग में संस्कारों की लड़खड़ाती परंपरा को पुनर्जीवित करने के लिए युग के विश्वामित्र पं० श्रीराम शर्मा आचार्य, परमपूज्य गुरुदेव ने ऋषि संस्कृति की जिन धाराओं को पुनर्जीवित करने में भागीरथी प्रयास-पुरुषार्थ व तप किए, उसी में संस्कारों की परंपरा स्वयं में अद्वितीय कही जा सकती है।

आज जब कर्मकांड इतने जटिल हो चले हैं और वे मात्र पंडितों-पुरोहितों के अर्थोपार्जन तक सीमित माने जाते हैं व किसी तरह मंत्रों के उच्चारण की खानापूर्ति के साथ चिह्नपूजा भर करते देखे जाते हैं, तो ऐसें में युगतीर्थ में युगऋषि द्वारा स्थापित संस्कार परंपरा स्वयं में पुनीत, पावन व अद्वितीय है।

कोई भी आस्थावान यहाँ आकर इनकी निःशुल्क सेवा का लाभ ले सकता है और जन्मदिन से लेकर नामकरण, मुंडन, विद्यारंभ तथा विवाह संस्कार व मरणोत्तर श्राद्ध आदि संस्कारों में भागीदार बन सकता है। इस गायत्री तीर्थ में जिस भावभरे एवं अर्थपूर्ण ढंग से कर्मकांड संपन्न होते हैं, उनको प्रत्यक्ष देखा जा सकता है।

व्यक्ति, परिवार व समाज को जिस संस्कार- संजीवनी से चैतन्य किया जाना है, उसका स्वरूप युगऋषि द्वारा बहुत ही सुव्यवस्थित ढंग से यहाँ स्थापित किया गया है। एक आध्यात्मिक सेनिटोरियम के रूप में विकसित युगतीर्थ में यह कार्य बहुत ही कुशल ढंग से आयोजित किया जाता है।

संसार में हर काम कठिन है और हर काम सरल भी। सरल वे हैं, जिन्हें खेल की तरह दिलचस्पी के साथ और अपनी क्षमता के विकास का अभ्यास समझकर किया जाता है। कठिन वे हैं, जिन्हें आशंका, उदासी और भार-बेगार की तरह किसी प्रकार पूरा किया जाता है।

परमपूज्य गुरुदेव द्वारा प्रदत्त दर्शन में दीक्षित पुरोहितों की कुशल टीम इसका संचालन करती है। प्रतिदिन सैकड़ों-हजारों लोग युगतीर्थ के दिव्य वातावरण में रहकर इनका लाभ लेते हैं।

आज जब युग संस्कारहीन पीढ़ियों के दुष्कृत्यों से त्राहिमाम् कर रहा हो, समाज में नकारात्मक एवं दूषित वातावरण का बोलबाला हो, ऐसे में संस्कारों की संजीवनी आशा की किरण की भाँति है, युगतीर्थ शांतिकुंज जिसका समर्थ स्रोत है। स्वयं इसका हिस्सा बनते हुए व दूसरों को इससे जोड़ते हुए इस पुनीत कार्य में अपना योगदान दिया जा सकता है। ❑

गायत्री की चमत्कारिक शक्ति

परमवंदनीया माताजी अपने इस अलौकिक उद्बोधन में गायत्री जयंती की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए कहती हैं कि गायत्री जयंती का दिन अत्यंत पवित्रता का दिन है। अनेक ऋषियों ने गायत्री मंत्र का सहारा लिया और उसके माध्यम से न केवल उनके स्वयं के जीवन को, बल्कि पूरी सृष्टि को कृतार्थ किया। वंदनीया माताजी कहती हैं कि गायत्री की उपासना साधक के जीवन में ऐसी शक्ति का अवतरण करती है, जिसके माध्यम से वह चमत्कारिक परिणामों को प्राप्त करने में सफल हो पाता है। वे पूज्य गुरुदेव का उदाहरण देते हुए कहती हैं कि गायत्री परिवार का पूरा विस्तार और मिशन की तीव्र प्रगति उसी गायत्री-उपासना का परिणाम है। वंदनीया माताजी कहती हैं कि यह समय प्रज्ञा के अवतार का है और गायत्री जयंती के इस महत्त्वपूर्ण अवसर पर हर शिष्य एवं साधक को गायत्री की ज्ञानगंगा को जन-जन तक पहुँचाने के लिए तत्पर हो जाना चाहिए। आइए हृदयंगम करते हैं उनकी अमृतवाणी को........

पवित्रता का दिन

गायत्री मंत्र हमारे साथ-साथ—

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।

प्यारे-प्यारे बच्चो! देवियो! हमारे आत्मीय प्रज्ञा परिजनो!

आदिकाल से पर्वों की परंपरा चली आ रही है। ज्ञान और विज्ञान के आधार पर सारे-के-सारे पर्व-त्योहार मनाए जाते रहे हैं जैसे—होली, दीपावली, दशहरा, विजयादशमी, गायत्री जयंती आदि। गायत्री माता का प्रादुर्भाव हुआ आज के दिन, गायत्री जयंती के दिन, एक ऐसे संत के द्वारा जिन्हें समझती हूँ कि वे विश्वामित्र से कम नहीं हैं।

विश्वामित्र ने गायत्री-उपासना की थी। गायत्री-उपासना के द्वारा हरिश्चंद्र के पिता के लिए अन्यत्र स्वर्ग की स्थापना की। उन्होंने अपने तप के द्वारा एक नूतन स्वर्ग की स्थापना भी की थी। अनेक ऋषियों ने गायत्री मंत्र का सहारा लिया है और जिसने भी इसका सहारा लिया है, वो आगे बढ़ा है। वह तो गायत्रीमय ही हो जाता है, इसमें दो राय नहीं। गुरुजी के जीवन में गायत्री माता आईं और जब गायत्री माता का प्रादुर्भाव हुआ तो सारे रोम-रोम में गायत्री माता समा गईं। वे गायत्रीमय ही हो गए, जिस तरह से रामकृष्ण परमहंस। लोग कहते हैं कि यह तो कालीमय हैं, रामकृष्ण नहीं हैं। वे कालीमय हो गए; क्योंकि श्रद्धा और निष्ठा से जो उपासना की जाती है, वह फलित होती है। हमारा मन कहीं और रहता है, तन कहीं और रहता है, यह भी कोई भक्ति है?

भक्ति तो वह है, जिसमें आराध्य से भक्त कहता है कि जो भी देना है दीजिए, हमारे पापों का निष्कासन कीजिए, इन्हें निकालिए-निकालिए। ऐसी भक्ति करने वाले गायत्रीमय हो जाते हैं। आज दशहरा भी है और कौन-सा दशहरा है? 'गंगा दशहरा' है।

भगीरथ ने तपस्या की थी। समस्त मानव जाति के उद्धार के लिए। गंगा अनवरत बहती हुई चली आईं और उनके माध्यम से उनने समझाना चाहा कि हे दुनिया के लोगो! समझो। समझो कि भक्त की परिभाषा क्या होनी चाहिए? करुणा, दया, सेवा, अपने को ऊँचा उठाना और दूसरों को ऊँचा उठाना है। यह भक्त की परिभाषा है। आपने कभी किया क्या? किया नहीं है, तो आप गंगा जैसे निर्मल कैसे हो सकते हैं? कैसे पवित्र हो सकते हैं? यह पवित्रता का दिन है।

गायत्री शोधन करती है, ज्ञान को बढ़ाती है, ऊर्जा देती है, धन-दौलत देती है, इसका तात्पर्य यही है कि उससे ब्रह्मतेज जो मिलता है, उसी से लोक-परलोक का लाभ उठा लेता है सच्चा भक्त। इस लोक में इस लायक बन जाता है कि अपना सीना ताने और सिर ऊँचा किए हुए दूसरों को रास्ता बताते चला जाता है, यह कहता हुआ कि भक्ति की परिभाषा यही है कि भक्त को चाहिए कि निर्मल बने, शीतल बने और औरों को शीतलता प्रदान करे।

गंगा पापों का हरण करती है और गायत्री हमारे ज्ञान को ऊँचा उठाती है। ज्ञान नहीं है तो कुछ नहीं है। ज्ञान है, पर व्यवहार में नहीं है, तो भी कुछ नहीं है। शिक्षा तो है, पर विद्या नहीं है, फिर क्या फायदा? शिक्षा, रोजी और रोटी से ताल्लुक रखती है। विद्या का हमारे समूचे मानव जीवन से ताल्लुक है। जो मैंने पहले ही दिन टोली में जाने वालों को कहा था कि हमें तो ब्रह्मबीज की आवश्यकता है। यह ब्रह्मबीज जो विद्या फैलाता है, गायत्री-उपासना से ही मिलता है।

राजहंस है गायत्री

गायत्री के विषय में कहा गया है कि यह राजहंस है। इसके दो पंख हैं। एक है—भौतिक, एक है—आध्यात्मिक। आध्यात्मिक और भौतिक, दोनों ही इसके पंख हैं। जो चाहो उड़ान भर सकते हो। अभी बच्चों ने एक गीत गाया, उस समय मैं भावुक हो गई थी। इसलिए हो गई कि आज के दिन एक संकल्प लिया गया था, भागीरथी संकल्प।

वह संकल्प तो लगभग पूरा होने को है कि गायत्री माता को हम अपने जीवन में धारण करेंगे और इसे विश्वव्यापी बनाएँगे। विश्व का कोई भी कोना ऐसा नहीं छोड़ेंगे, जिसमें हमारी गायत्री माता विराजमान न हो। भक्ति की परिभाषा बता रहे हैं आपको कि हर कोने-कोने में, राष्ट्र के कोने-कोने में यह ब्रह्मविद्या पहुँचनी चाहिए। जिस माता ने इतना अनुदान दिया है, जिस माता ने रक्त के कण में से दूध पिलाया हो, वह महान है, बड़ी महान है।

आज किसी की माँ हो तो वे अंदाज लगा सकेंगे कि माँ कितनी महान होती है, कितनी दयालु, कितनी करुणामयी होती है। अपना सारा जीवन कष्टमय बिताती रहती है और बच्चों को भान भी नहीं होने देती कि कष्ट भी कोई चीज है क्या? माँ बड़ी जबरदस्त होती है। गायत्री माँ का तो कहना ही क्या है? साधारण माँ की बात कह रही थी और चेतना को धारण करने वाली उस शक्ति का तो कहना ही क्या? जिस किसी ने मन से, श्रद्धा से पुकारा होगा तो संभव है, उसके दुःख-कष्ट जो उसको पीड़ा पहुँचा रहे थे, उनमें उसे कमी आती मिली होगी। निश्चित मिली होगी। मान लीजिए समय ही आ गया है या प्रारब्ध, जो प्रारब्ध हमारे जन्म का

आदि शंकराचार्य का नाम ज्ञान की साक्षात् मूर्ति के रूप में लिया जाता है। उल्लेख आता है कि एक बार एक जिज्ञासु उनसे मिलने के लिए पहुँचा।

उसने शंकराचार्य से प्रश्न किया—"दरिद्र कौन है?" आचार्य शंकर ने उत्तर दिया—"जिसकी तृष्णा का कोई पार नहीं, वही सबसे बड़ा दरिद्र है।"

उस जिज्ञासु ने पुनः प्रश्न किया—"धनी कौन है?" शंकराचार्य बोले—"जो संतोषी है, वही धनी है। संतोष से बड़ा धन दूसरा नहीं है।"

जिज्ञासु को पुनः जिज्ञासा उभरी—"वह कौन है, जो जीवित होते हुए भी मृतक के समान है।" उन्होंने उत्तर दिया—"वह व्यक्ति जो उद्यमहीन है और निराश है, उसका जीवन एक जीवित मृतक की भाँति है।"

भोग हैं, वे आड़े आ गए होंगे, तो बेटे! वे तो आएँगे ही। उनके लिए क्या करें?

इस जन्म में नहीं, तो अगले जन्म में भोगो इन्हें, दृढ़ता के साथ। कायर मत बनो, रोओ नहीं। रोने से बुजदिली पैदा होती है, रोने वाले के पास कोई बैठना पसंद नहीं करेगा। मैं आपसे यह निवेदन कर रही हूँ कि आपकी जो छोटी-छोटी दिक्कतें व कठिनाइयाँ होती रहती हैं, उन कठिनाइयों में कैसे मायूस हो जाते हैं और उन्हीं में फँसकर आप रह जाते हैं। आप उस शक्ति के साथ जुड़े नहीं, जुड़े नहीं तो लाभ नहीं मिला। जुड़कर तो देखें। आप तो थोड़े से जुड़े केवल! गुरुजी के पाँव, गुरुजी का शरीर देखा आपने?

क्या आपने गुरुजी का आशीर्वाद पाया? हाँ बेटा! पाया, लाखों व्यक्तियों ने पाया और आज यदि उन सभी के बारे में लिखा जाए तो अठारह पुराण बन जाएँगे। अभी आप में से किन्हीं को खड़ा कर दूँ, जो मेरे सामने ही बैठे हैं, तो दो-चार-पाँच-दस ऐसे अवश्य होंगे, जिन्हें दुःख-कष्ट में कितनी राहत पहुँची। आपके अंतिम समय तक आपकी सेवा होती रही और होती रहेगी, चूँकि आप हमारे परिजन हैं न। आप हमारे बालक हैं। पाने की दृष्टि से आप इस पर ध्यान देना कि भक्ति का स्वरूप आखिर कैसा हो?

गुरुजी-माताजी मिशन हैं

बेटे! गायत्री माता से माँगेंगे ही या कुछ देंगे भी। देना क्या है? गुरुजी से माँगें ही माँगेंगे या गुरुजी को कुछ चाहिए भी। क्यों साहब? गुरुजी के लिए क्या चाहिए? रुपया-पैसा, धोती-कपड़ा, खाना-पीना, नहीं बेटे! हमारी जो भुजाएँ हैं, उनसे हम कमा लेंगे। न हमने मिशन का खाया है और न कभी मिशन का खाएँगे, यह हमारी प्रतिज्ञा है।

गुरुजी और माताजी एक मिशन हैं। ये व्यक्ति नहीं हैं। आप फिर समझ लीजिए ये व्यक्ति नहीं हैं, मिशन हैं और यह मिशन अब बहुत तेजी से बढ़ता हुआ चला जा रहा है। कुछ ही दिनों में देखना, यह मिशन कहाँ-से-कहाँ पहुँचेगा? हम रहें, चाहे न रहें। मेरी जीवात्मा कहती है, मेरा साहस कहता है और मेरा पुरुषार्थ कहता है कि मैं किसी भी बच्चे को बुजदिल नहीं होने दूँगी। मैं उनमें बराबर प्रेरणा भरती रहूँगी। गुरुजी भरेंगे, हम भरते रहेंगे। आपको प्रेरित करते हुए उस दिशा में ले जाएँगे, जो देश कभी सोने की चिड़िया कहा जाता था, वहाँ तक ले जाकर ही छोड़ेंगे। सारे विश्व में ब्राह्मणत्व पैदा करके ही छोड़ेंगे।

पैदा करें ब्राह्मणत्व

बेटे! ब्राह्मणत्व पैदा किया ही जाना चाहिए। ब्राह्मण जैसा जीवन जिया जाना ही चाहिए। ब्राह्मण का कर्त्तव्य है—सारे संसार को ज्ञान देना, ऊँचा उठाना। ब्राह्मण का अर्थ यह नहीं होता कि सीधा दे जाओ। सीधा खाना एवं उलटा-पुलटा पाठ पढ़ाना कि आओ तुम्हारे ग्रह ऐसे हैं, वैसे हैं। ब्राह्मण ऐसे नहीं होते, ब्राह्मण का तो यह है कि चाहे व्यक्ति की साँसें निकल रही हों; लेकिन वह कहेगा नहीं बेटे! इसका क्या बिगड़ा है? यह नहीं कहेगा कि राहु का ग्रह है, अब तेरा बेटा मरा। ब्राह्मण नहीं कहेगा, यह तो चांडाल कहेगा। वह तो मनोबल पैदा करेगा। संतुलित मनःस्थिति बनाने की ओर प्रेरित करेगा।

आप ब्राह्मण की तरह सेवा करना सीखें। लेना-ही-लेना सीखा है, देना नहीं। शंकर जी भी दे जा, हनुमान जी भी दे जा, संतोषी माता भी दे जा। अरे सब दे ही जाओ, तो तुम क्या दोगे जरा बताना? हम कुछ नहीं देंगे। तुम काम आओगे समाज के, राष्ट्र के। काम आओगे राष्ट्र के जिस पर विपत्तियाँ छाई हुई हैं। जो विकृतियाँ फैली हुई हैं, उन विकृतियों के प्रति आपके अंदर की जो संवेदनाएँ हैं, वे संवेदनाएँ मर गई हैं, तो भक्त कैसे हो गए?

भक्त के अंदर तो संवेदना होती है, ऐसी जैसी कि शिवाजी की। शिवाजी के गुरु समर्थ रामदास जी ने सोचा कि देख लिया जाए, यह अभी बच्चा ही तो है कि परीक्षा में यह फेल है कि पास है। उनने कहा—बेटे! मेरी आँखों में दरद हो रहा है, तो गुरुदेव क्या आज्ञा है? दूध चाहिए सिंहनी का, तू दूध लाएगा सिंहनी का। उन्होंने कहा—संकल्प मेरा है और शक्ति गुरुदेव आपकी है, मैं उसको लाकर ही रहूँगा और वे कटोरा भरकर दूध ले आए। न आँखों में दरद था, न सिंहनी थी, वह तो मायारूपी सिंहनी थी। केवल परीक्षा लेनी थी। परीक्षा ली थी शिवाजी की उनके गुरु ने। वे थे शक्तिशाली। जिनके अंदर अपने गुरु के प्रति, अपने इष्ट के प्रति, आराध्य के प्रति, इतना अगाध विश्वास, प्रेम और भक्ति जिस किसी के मन में हो जाएगी, मैं समझती हूँ, उसको कोई कठिनाई नहीं होगी।

कैसी हो भक्ति?

भक्ति का मूल्य यह है कि भक्त का मन कैसा होना चाहिए? समर्पित होना चाहिए। जिस तरीके से नाला नदी में

मिल जाता है, गंगा में मिल जाता है, तो पवित्र हो जाता है। गंगाजल हो जाता है। उसका आचमन लेते हैं, उसे शुद्धीकरण में लेते हैं, गंगाजल की आरती उतारते हैं; क्योंकि जो पहले नाला था, अब वह पवित्र हो गया है, वो अब गंगा से मिल गया है।

बेल पेड़ से चिपक जाती है, तो उसके समकक्ष हो जाती है, यह है समर्पण। पत्नी जब अपने पति के साथ आती है, तो पिछला जीवन भूलकर आती है और आगे का पाठ पढ़ती है। पिया ही मेरा भगवान है, यही मेरा सब कुछ है, यह घर ही मेरा देवमंदिर है। यही मेरे चारों धाम हैं, यही मेरा तीर्थ है। अरे जिस नारी के मन में ये हो, उसे क्या कष्ट हो सकता है? भौतिक जगत् का कष्ट कभी उसको प्रभावित नहीं करता। प्रभावित कौन-सी चीज करती है? जब हम उसके साथ द्वेष भाव, कटुता से बोलते हैं अथवा उसके बताए मार्ग पर नहीं चलते।

जब रामकृष्ण परमहंस जाने लगे तो शारदामणि थीं। उनके कोई बच्चा था नहीं। विवेकानंद थे पीछे। तो जब वे जाने लगे तो उन्होंने कहा—''शारदामणि! मेरे मन में एक बात आ रही है। क्या तुम उसे सुनने को तैयार हो?'' तो उन्होंने कहा—''क्या आपको मेरे ऊपर विश्वास नहीं है? इस उपासिका के लिए, इस पुजारिन के लिए जो भी मेरा आराध्य मुझे देगा, भर-भर झोली उसे लूँगी और उस याद को सँजोकर रखूँगी और जो मुझसे कहा गया है, मैं उसका पूरा निर्वाह करूँगी।''

मैं उदाहरण दे रही हूँ कि भक्ति का स्वरूप कैसा हो? तो उन्होंने एक बात यह कही—हमारा आगा-पीछा है, तुम छोटी हो, हम बड़े हैं; लेकिन तुम मिशन की माँ हो और माँ के नाते बच्चा माँ से प्यार करता है और प्यार के सहारे उठता हुआ चला जाता है। तुम दो काम करना। भले ही पढ़ी-लिखी कम हो, बच्चों को ज्ञान देना; ताकि हमारा यह मिशन बढ़ता हुआ चला जाए। मैं तुम्हें मिशन को देकर जा रहा हूँ। उनने कहा देव! मुझे सब स्वीकार है और कुछ देना चाहते हो तो दे दीजिए। यह होती है भक्ति। यह भक्ति नहीं होती कि अरे! अब क्या करेंगे, अब कैसे होगा? होगा क्या, जो सबका होगा, वह तुम्हारा होगा। जो होता है होगा, अब क्या किया जाए? पर जो लक्ष्य है, उद्देश्य है ऊँचा उठने का, उसे याद रखना चाहिए।

अंतस् में वेदना लाइए

अपने इष्ट के प्रति समर्पण भावना यदि है अंतस् में, तो वह वेदना भी होनी चाहिए। अंतस् में जब वेदना है, तो उसको बनना भी चाहिए, बनाना चाहिए, तो उससे और लोगों को प्रेरणा भी लेनी चाहिए और लोग प्रेरित भी हों। जो खुद बना ही नहीं है, वह दूसरों को क्या बनाएगा? वाल्मीकि के बारे में नहीं सुना है? सीता को छोड़ा गया उन्हीं के आश्रम में। आखिर पहला जीवन उनका कैसा था और जब वे राम से जुड़ गए, तो वही जब उनकी संवेदना जागी और करुणा फूटी तो वे ऋषि हो गए। पक्षी के जोड़े को तिलमिलाते देखा, तो उनकी करुणा फूटने लगी। यह जीवन है, नारकीय जीवन। इस जीवन को छोड़ो, अभी छोड़ो और जिनने छोड़ दिया, वे ऋषि बन गए।

गायत्री की शक्ति

इसी तरह से संत तुलसीदास का भी था। तुलसीदास जी जो कामी थे, उन्हें यह भी होश नहीं कि कहाँ चले जा रहे हैं? नाव में बैठकर जा रहे हैं, कि लाश पर बैठकर जा रहे हैं, कि रस्सी को खींचते हुए जा रहे हैं, कि साँप को खींचते हुए जा रहे हैं, उनको यह भी ज्ञान नहीं था, पर एक नारी के, अपनी पत्नी के इतना कहने से कि इस नश्वर शरीर से इतना लगाव? इतना लगाव भगवान से हो जाए, तो आप चमक जाएँगे, आपकी प्रतिभा चमक जाएगी और आप आने वाले समय में इसी तरह से पूजे जाएँगे,- जैसे कि भगवान की पूजा होती है।

यही हुआ कि स्वयं भगवान राम उनके पास आए—

चित्रकूट के घाट पर, भई संतन की भीर।
तुलसीदास चंदन घिसें, तिलक देत रघुवीर॥

भगवान स्वयं तिलक लगाने के लिए आए थे, किनके पास? तुलसीदास के पास। हनुमान जब भगवान राम से जुड़ गए, तो शक्तिशाली होते हुए चले गए, जिनको कि हम वानर के रूप में जानते हैं, जो कि डरपोक की तरह बैठे थे व सुग्रीव के नौकर थे, पर जब भगवान से जुड़ गए, तो अपार शक्ति उनमें आती हुई चली गई। आपने रामायण में पढ़ा है, उसकी अधिक व्याख्या मैं क्यों करूँ? उन्होंने लंका दहन किया, सुरसा के मुँह में से निकले, समुद्र भी लाँघा, इतने शक्तिशाली हो गए। लेकिन हम जरा-जरा सी परिस्थितियों में ऐसे जकड़ जाते हैं कि जैसे मकड़ी के जाले में मकड़ी स्वयं फँस जाती है। किंतु जब शक्ति के रूप में

गायत्री आती है, तब परिस्थितियाँ स्वतः सुलझती चली जाती हैं।

बेटे! यदि सच्ची श्रद्धा आपकी गुरुजी के प्रति, गायत्री माता के प्रति और इस माँ के प्रति है और विश्वास भी आपको दिलाया है, तो फिर हम भी आपको विश्वास दिलाते हैं कि जो भी सेवा आपकी कर सकते होंगे, जरूर करेंगे। एक कबूतर और कबूतरी थी। एक बहेलिया था—भूखा बहेलिया। वह आकर के सो गया पेड़ के नीचे और ऊपर कबूतर और कबूतरी बैठे विचार कर रहे थे। आपस में बोले—यह हमारा अतिथि है, जो आज भूखा है, हम इसके लिए क्या उपाय करें और तो हम गरीब कुछ कर नहीं सकते? हाथ-पाँव तो हैं नहीं, जो कमा के लाएँ कुछ।

अब दोनों ने विचार किया और कहा अच्छा मैं उपाय करता हूँ। वह एक तीली लाया जलती हुई। घास-फूँस इकट्ठा करके दूसरा साथी लाया और तीली को डाल दिया। जब लौ पकड़ने लगी, तो दोनों ही उसमें स्वाहा हो गए। दोनों स्वाहा हो गए और बहेलिये की क्षुधा उन दोनों पक्षियों के माध्यम से मिट गई।

भगवान को उसने धन्यवाद दिया कि हे भगवान! तूने यह कैसी दया की कि आज हमको भोजन अपने आप मिल गया। तो कबूतर-कबूतरी तो नहीं हैं, जो हम जल रहे हों और आप बहेलिया भी नहीं हैं। आप तो हमारे बहुत काम के हैं। जो छूटा हुआ कार्य है अवतारी सत्ता का, वह आप पूरा कर रहे हैं।

प्रज्ञा का अवतार हुआ है, अब यह कार्य हो रहा है, जिसे आप विराट रूप में देखते हैं, तो आप क्या कहना चाहती हैं? गुरुजी को अवतारी बना रही हैं। बेटा! कहने दीजिए, इसमें आपको क्या एतराज होना चाहिए? अवतारी ही हैं। अरे मैं तो यह कहूँगी कि हर व्यक्ति ही अवतारी है। हर व्यक्ति के अंदर चेतना है, शक्ति है, पर उसको व्यक्त नहीं करना चाहता। वह भी भगवान का अंश है, हर व्यक्ति चेतना का एक अंश है, पर जो अपने देवत्व को जगा लेता है, अपनी श्रद्धा को जगा लेता है, करुणा को जगा लेता है, वह अवतार बन जाता है। संत-सुधारक और शहीद बन जाता है।

आज गंगा दशहरा के दिन में बेटो! तुम सबके लिए यही संदेश है कि अपनी भक्ति का स्तर जितना बढ़ा सकते हो, बढ़ाओ। अवतारी सत्ता तुम में भी प्रकट हो सकती है। संत तुम भी बन सकते हो। गायत्री की ज्ञानगंगा को गुरुजी की तरह यदि घर-घर पहुँचा सको, तो तुम्हारा यहाँ आना—गायत्री जयंती मनाना निश्चित ही सार्थक हो जाएगा।

॥ ॐ शांतिः ॥

पंडित राधावल्लभ तिवारी उच्चकोटि के संत थे। वे सतत आध्यात्मिक अनुष्ठानों में निरत रहते और कर्मबंधनों को काटने के लिए प्रभुभक्ति का सहारा लेते। सद्‌हृदय व्यक्तियों के अनेक विरोधी भी होते हैं। एक बार एक सुप्रसिद्ध तांत्रिक ने उन पर गंभीर तांत्रिक क्रिया की, पर वे उससे तनिक भी विचलित नहीं हुए।

उनके एक शिष्य ने जब उनसे उनकी इस निस्पृहता का कारण पूछा तो वे मुस्कराए और बोले—"विवेक और वैराग्य दो ऐसे हथियार हैं, जिनसे सर्वशक्तिमान परमेश्वर की माया काटी जा सकती है तो ऐसे तुच्छ मायाजाल की भला क्या सामर्थ्य है?" परमेश्वर की भक्ति करने वाले का पथ स्वयं भगवान सुरक्षित करते हैं।

विश्वव्यापी विस्तार का वाहक बना देव संस्कृति विश्वविद्यालय

मानवीय उत्थान का हर संभव प्रयास करता, पूज्य गुरुदेव के दिव्य स्वप्नों का विश्वविद्यालय—देव संस्कृति विश्वविद्यालय सतत अपनी प्रगति यात्रा पर आरूढ़ है। भारत समेत समस्त विश्व को पूज्य गुरुदेव के ज्ञान के आलोक से प्रकाशित कर देने हेतु संकल्पित यह विश्वविद्यालय शिक्षा व विद्या की समायोजित अनूठी शैली से निरंतर परिष्कार की प्रक्रिया को संपन्न कर रहा है। पूज्य गुरुदेव के अनुसार—आज की अराजकता से लेकर चारों ओर छाई विभीषिका की परिस्थितियों के पीछे छिपे कारण पर ध्यान दिया जाए तो विवेक एक ही निष्कर्ष पर पहुँचता है और वह है—अज्ञानता।

समस्या व उसके कारण का पता यदि समय रहते चल जाए तो समाधान मिलते देर नहीं लगती। ज्ञान की गंगा के अवतरण को संभव बनाने व उससे सहज ही सभी के कल्याण का मार्ग प्रशस्त करने वाले पूज्य गुरुदेव के दिव्य स्वप्न का सुफल परिणाम देव संस्कृति विश्वविद्यालय ज्ञान की उसी परिधि के विस्तार में निरंतर संलग्न है।

विस्तार के इसी क्रम में देव संस्कृति विश्वविद्यालय एवं छात्रपति शाहू जी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर के बीच गर्भोत्सव संस्कार व योग के विभिन्न आयामों पर सहयोग हेतु अनुबंध स्थापित किया गया। इस अनुबंध के परिणामस्वरूप दोनों विश्वविद्यालय के माध्यम से उल्लिखित क्षेत्रों में अनुसंधान तथा शिक्षण को विस्तार मिलेगा।

विश्वविद्यालय के अंतरराष्ट्रीय विस्तार के क्रम में विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति कनाडा के वाटरलू पहुँचे और यूनिवर्सिटी ऑफ वाटरलू के साथ अनुबंध हस्ताक्षर किया। साथ ही उन्होंने यूनिवर्सिटी के Centre for Spirituality and Wisdom Practices का उद्घाटन किया। इसके पश्चात उन्होंने रेनिसन यूनिवर्सिटी कॉलेज में शिक्षकों के मध्य उद्बोधन दिया। इस कार्यक्रम में यूनिवर्सिटी ऑफ वाटरलू की प्रेसिडेंट वैंडी फ्लेचर भी उपस्थित थीं।

अपने यूरोप प्रवास पर प्रतिकुलपति रोमानिया के क्लूज शहर के विश्वविद्यालय यूनिवर्सिटी ऑफ आर्ट्स एंड डिजाइन में पहुँचे और वहाँ के कुलपति के साथ मिलकर देव संस्कृति विश्वविद्यालय के साथ नए अनुबंध की संभावनाओं पर चर्चा की। इसी प्रवास में उन्होंने क्लूज शहर के बाबा बोइस यूनिवर्सिटी के इंडिया सेंटर की निदेशक से भी मुलाकात की एवं विस्तार की संभावनाओं पर विचार-विमर्श किया।

हिमालय क्षेत्र में एक गुरुकुल के रूप में स्थापित यह विश्वविद्यालय विश्व के आकर्षण का केंद्र है, जो अनेक प्रतिभासंपन्न व प्रतिष्ठित गणमान्यों को स्वयं की ओर खींच लाता है। विश्वविद्यालय परिसर में शांतिकुंज स्वर्णजयंती व्याख्यानमाला की कड़ी में राष्ट्रमंडल राष्ट्रों की महासचिव श्रीमती बैरोनेश पेट्रीसिया स्कॉटलैंड का आगमन हुआ।

इस अवसर पर इंग्लैंड की प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ श्रीमती पेट्रीसिया ने कहा कि आप सभी अभी युवा हैं और विश्वविद्यालय ने ज्ञान बढ़ाने का जो आपको अवसर दिया है, इसे गँवाएँ नहीं; क्योंकि कैरियर को सँवारने का यही सुनहरा अवसर है। उन्होंने यह भी कहा कि विश्व को ज्ञान, आध्यात्मिकता और आशा के सूत्रों को मानवता एवं एकता के धागे में पिरोकर ही कार्य करने होंगे। उन्होंने आगे कहा कि विश्व को मानवता को बचाए रखने के लिए पर्यावरण संरक्षण और भुखमरी के लिए मिलकर कार्य करने की आवश्यकता है। अखिल विश्व गायत्री परिवार के नेतृत्व में पर्यावरण संरक्षण एवं मानवता के लिए जो कार्य हो रहे हैं, वे पूरे राष्ट्रमंडल देशों के साथ संपूर्ण विश्व के लिए प्रेरणास्रोत हैं।

इससे पूर्व प्रतिकुलपति ने कार्यक्रम की रूपरेखा बताते हुए विश्वविद्यालय की रचनात्मक गतिविधियों एवं महान स्वतंत्रता संग्राम सेनानी युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव पं० श्रीराम शर्मा आचार्य जी द्वारा स्थापित गायत्री तीर्थ शांतिकुंज की परिकल्पनाओं एवं योजनाओं पर विस्तृत रूप से प्रकाश डाला।

व्याख्यान कार्यक्रम के अंत में देव संस्कृति विश्वविद्यालय के कुलपति ने सभी का आभार प्रकट किया। इसके पश्चात विश्वविद्यालय के कुलपति एवं प्रतिकुलपति द्वारा मुख्य अतिथि ब्रिटिश राजनीतिक श्रीमती पेट्रीसिया स्कॉटलैंड को गायत्री मंत्र लिखित चादर, गंगाजल, युगसाहित्य, स्मृतिचिह्न आदि भेंटकर उनको सम्मानित किया।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय के मृत्युंजय सभागार में आयोजित व्याख्यान कार्यक्रम से पूर्व मुख्य अतिथि श्रीमती पेट्रीसिया ने देव संस्कृति विश्वविद्यालय में स्थापित एशिया के प्रथम व एकमात्र बाल्टिक संस्कृति एवं अध्ययन केंद्र का अवलोकन किया। इस केंद्र द्वारा भारतीय संस्कृति के विस्तार में चलाई जा रही विभिन्न गतिविधियों पर प्रसन्नता व्यक्त की।

इस दौरान स्वरोजगार को प्रेरित करने वाली स्वावलंबन कार्यशाला एवं गोशाला का भी उन्होंने निरीक्षण किया। महासचिव श्रीमती पेट्रीसिया ने प्रज्ञेश्वर महादेव की पूजा-अर्चना कर विश्वशांति की कामना की और मंदिर परिसर में पौधा रोपण भी किया, जिसके पश्चात वे गायत्री तीर्थ शांतिकुंज पहुँचीं, जहाँ उन्होंने युगऋषिद्वय की पावन समाधि पर पुष्पांजलि अर्पित कर संपूर्ण मानवता के विकास हेतु प्रार्थना की।

इसी क्रम में उन्होंने शांतिकुंज के विभिन्न विभागों का भी अवलोकन किया। विशिष्ट अतिथियों के आगमन के क्रम में मेजर जनरल श्री एन०एस० राजपुरोहित जी का विश्वविद्यालय परिसर में आगमन हुआ। इस दौरान उन्होंने विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति से भेंट कर विश्वविद्यालय परिसर का भ्रमण भी किया।

इसी के साथ विश्वविद्यालय परिसर में मींचनदा राजकीय विद्यालय, केरला की प्रोफेसर डॉ० पी० प्रिया का विद्यार्थियों के साथ आगमन हुआ। अपने आगमन पर उन्होंने प्रतिकुलपति से भेंट की और भेंट के दौरान उन्होंने अपने शोध के विषय (हिंदी के उपन्यासों में शहरीकरण—भगवद्गीता और मनोविज्ञान में कक्षाओं का संचालन) पर प्रतिकुलपति जी से मार्गदर्शन लिया।

इसके पश्चात उन्होंने अपने विद्यार्थियों के साथ मिलकर देवसंस्कृति विश्वविद्यालय का भ्रमण किया एवं विश्वविद्यालय में चल रही गतिविधियों की खूब सराहना की व साथ ही भविष्य में विश्वविद्यालय में अध्ययन के लिए अपने विद्यार्थियों को प्रेरित किया।

विश्वविद्यालय परिसर में विगत दिनों Vrije University, Netherlands के श्री मनीष दीक्षित का आगमन हुआ। आगमन के उपरांत उन्होंने प्रतिकुलपति से भेंट की, तत्पश्चात उन्होंने विश्वविद्यालय के साथ अनुबंध बनाए रखने तथा समसामयिकी घटनाओं पर चर्चा की।

लोकप्रिय कवि एवं पद्मश्री से सम्मानित श्री सुनील जोगी भी विगत दिनों विश्वविद्यालय परिसर पधारे। इस दौरान उन्होंने प्रतिकुलपति से भेंट की। भेंट के दौरान विविध विषयों पर चर्चा हुई। श्री सुनील जोगी ने विश्वविद्यालय में चल रही सभी गतिविधियों की सराहना की।

आगमन के क्रम में विश्वविद्यालय परिसर में प्रसिद्ध शिक्षाविद् श्री शफी मदनी का आगमन उनके साथियों के साथ हुआ। अपने आगमन पर उन्होंने प्रतिकुलपति से भेंट की। साथ-ही-साथ उन्होंने विश्वविद्यालय का भ्रमण किया एवं परमपूज्य गुरुदेव द्वारा प्रदत्त—'शिक्षा ही नहीं विद्या भी' चिंतन की अत्यंत सराहना की।

विश्वविद्यालयीन शैक्षणिक गतिविधियों में 'मानसिक स्वास्थ्य में आध्यात्मिकता, आयुर्वेद और वैकल्पिक उपचारों की भूमिका' विषय पर अंतरराष्ट्रीय कार्यशाला का आयोजन किया गया। इस अंतरराष्ट्रीय कार्यशाला का उद्घाटन विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति ने किया। बहुआयामी कार्यशाला जिसका मुख्य उद्देश्य भारतीय विज्ञान, चिकित्सा और आध्यात्मिक विधाओं को समझ उनसे प्रासंगिक मानव जीवन की समस्याओं को सुलझाना रहा।

वैज्ञानिक अध्यात्मवाद विभाग द्वारा इस कार्यक्रम का आयोजन कराया गया। इस अवसर पर प्रतिकुलपति ने बताया कि मनुष्य की असल समस्या है उसका मन, जिसमें असंतोष, ईर्ष्या और क्रोध जैसी दुर्भावनाएँ हैं। उन्होंने इन समस्याओं का समाधान भी मनुष्य के मन को ही बताया।

उन्होंने यह भी कहा कि भारतीय संस्कृति में अंत:करण की समझ है, यहाँ की विभिन्न प्राचीन वैज्ञानिक विधाएँ हैं, जो आध्यात्मिकता की मदद से मनुष्य में सकारात्मक भावनाएँ जाग्रत करती हैं व साथ ही व्यक्ति को शारीरिक तथा मानसिक स्तर पर स्वस्थ बनाती हैं। कार्यशाला में भारत के 19 अलग-अलग राज्यों से आए करीब 100 शोधार्थियों ने भाग लिया और अपने शोधपत्र प्रस्तुत किए।

इसी क्रम में प्रतिकुलपति महोदय द्वारा मानसिक स्वास्थ्य में आध्यात्मिकता, आयुर्वेद और वैकल्पिक उपचारों की भूमिका विषय पर अंतर्विषयक अंतरराष्ट्रीय पत्रिका और ई-प्रोसीडिंग्स का भी विमोचन किया गया। अंतरराष्ट्रीय कार्यशाला के अंतिम दिन देव संस्कृति विश्वविद्यालय के कुलपति ने सभी प्रतिभागियों को संबोधित किया।

मानसिक रोगों से कैसे बचें, इसके लिए उन्होंने पूज्य गुरुदेव द्वारा लिखी गई कई पुस्तकों को पढ़ने और उसका अनुपालन करने की सलाह भी दी। इस कार्यशाला की अध्यक्षता प्रतिकुलपति द्वारा की गई तथा कार्यशाला का संयोजन डॉ० पीयूष त्रिवेदी ने किया। ❑

एक नगर में एक सेठ रहा करता था। वह तो दरियादिल था, परंतु उसका मुनीम पाई-पाई का हिसाब रखने वाला था। एक बार उसने लक्खीसिंह नामक एक गरीब व्यक्ति को हजार रुपये का ऋण देने का आश्वासन दिया। सेठ का आश्वासन लेकर वह मुनीम के पास गया तो मुनीम बोला—"पैसे तो ले जा, पर यह बता कि चुकाएगा इस लोक में या उस लोक में?" लक्खीसिंह को लगा कि उस लोक को किसने देखा है, अतः उसी लोक में चुकाने को कह देता हूँ। यह आश्वासन देकर वह घर तो लौट आया, पर उसकी अंतरात्मा उसे धिक्कारने लगी।

मन के भार से मुक्त होने का उपाय जानने के लिए वह एक संत के पास गया और उन्हें सारा विवरण सुनाया। उसने उनसे पूछा—"महाराज! मैं इस ऋण से परलोक में कैसे मुक्त हो सकता हूँ?" संत बोले—"बेटा! लोक-परलोक तो शुभ-अशुभ कर्मों से मिलते हैं।" तू ऐसा कर कि इन पैसों से एक प्याऊ खोल और राहगीरों के नाम से निःशुल्क चलने दे। वे आते-जाते तुझे हृदय से धन्यवाद देंगे तो वे शुभ कर्म तेरे साथ परलोक चले जाएँगे।" लक्खीसिंह ने ऐसा ही किया। जब यह समाचार सेठ को मिला तो वह उससे मिलने पहुँचा और उससे बोला—"भाई! तुम मेरे धन का सदुपयोग करके इसी लोक में ऋणमुक्त हो गए हो। अब तुम्हें मुझे कुछ लौटाने की आवश्यकता नहीं है।" लक्खीसिंह की दरियादिली के कारण बाद में उस जगह लोगों ने तालाब खोदकर उसका नाम लक्खीताल रख दिया। धन का सदुपयोग ही कीर्ति का कारण बनता है।

गायत्री परिजन होने के नाते हमारे दायित्व

वर्तमान समय में सामाजिक प्रवाह और समष्टिगत परंपराएँ इस ओर इशारा करती हैं कि समाज, विकास के मानदंडों को एक ही आधार पर सुनिश्चित करके देखता है और उसका नाम सुख की प्राप्ति है। सुख की प्राप्ति, जीवन का मूल उद्देश्य प्रतीत होती है, चाहे वो किसी भी रूप में, किसी भी माध्यम से आए। इसे ऐसे भी कह सकते हैं कि वर्तमान युग में समाज प्रगति की व्याख्या, सफलता के आधार पर करता है। हम प्रगति कर पा रहे हैं या नहीं कर पा रहे हैं—इस बात का मूल्यांकन इस आधार पर होता दिखता है कि हम सफल दिख रहे हैं या नहीं?

चिंताजनक बात ये है कि सफलता तक ही यह दौड़ रुक गई होती तो कोई परेशानी की बात नहीं थी, पर समस्या यह है कि आज सफलता का अर्थ भी समाज प्रतिद्वंद्विता के आधार पर लेता है। एक व्यक्ति के पास घर, नौकरी, पैसा होना ही पर्याप्त नहीं है—यह भी जरूरी हो गया है कि ये औरों की तुलना में ज्यादा हो। चाहे उसे वो तथाकथित सफलता प्राप्त करने के लिए अपने मूल्यों से समझौता करना पड़े, गलत राह को और गलत चाह को जीवनमूल्यों का अंग बनाना पड़े—हमें इससे अंतर नहीं पड़ता; क्योंकि समाज ने सफलता के मानदंड बाह्य पैमानों पर तय कर दिए हैं।

ऐसा लगता है कि व्यक्ति यह लगभग भूल ही गया है कि मनुष्य का जीवन हमें मिला था, उसके अपने अंतर्निहित लक्ष्यों को भी प्राप्त करना था, बल्कि यह बाहरी भाग-दौड़, यह छीना-झपटी ही जीवन का एकमात्र उद्देश्य बन गए हैं। आत्मिक संतोष, आत्मज्ञान, आत्मसाक्षात्कार की प्राप्ति—इस ओर किसी की दृष्टि ही नहीं है; क्योंकि सफलता के पैमाने जिन सतही आधारों पर तय कर दिए गए हैं—उनमें आंतरिक उत्कर्ष और आध्यात्मिक सोपानों का कोई स्थान नहीं है।

क्या यह देखकर किसी को आश्चर्य नहीं होता कि मानवीय समाज जीवन के हर पक्ष, हर पहलू की इतनी समीक्षा करता है, पर बस, स्वयं की आत्मिक प्रगति के उद्देश्यों को भुलाकर बैठा है? परमपूज्य गुरुदेव कहते थे कि मनुष्य का मन निरंतर कुछ-न-कुछ करने में निरत है, जीवन भर इनसान पाने के लिए ही दौड़ता है, फिर क्या कारण है कि इतना सब दौड़ लेने के बावजूद इतना असंतोष, इतना विक्षोभ और इतनी रिक्तता है? सारी जिंदगी तो मनुष्य कुछ-न-कुछ पाने के लिए ही दौड़ा है और अपने मन में उसने कुछ-न-कुछ बटोरा ही है तो फिर इस खालीपन का कारण क्या है?

ध्यान से देखें तो इस सूनेपन का कारण एक ही है कि कहीं गहरे में मनुष्य के मन में यह भ्रांति बैठ गई है कि बाह्य आडंबरों से, बाहरी वैभव से आंतरिक खालीपन की पूर्ति की जा सकती है। इसके पीछे कारण यही है कि समाज ने हमें यह सिखा दिया है कि जीवन में शांति—पैसे बढ़ जाने से आ जाती है। आश्चर्य है कि होता तो इसके विपरीत दिखता है, पर इनसान तब भी सँभलता नहीं। पैसे बढ़ जाने से आत्मज्ञान नहीं मिल पाता और पदोन्नति हो जाने से कोई अष्टावक्र नहीं हो जाता।

यह सत्य जानते सभी हैं, पर तब भी हर व्यक्ति इसी खालीपन के पीछे दौड़ता नजर आता है। इस सत्य को बारंबार लिखने व स्मरण कराने के पीछे का कारण यही है कि हम याद कर सकें कि जीवन में तृप्ति-तुष्टि बाहर की चमक से नहीं, बल्कि भीतर के प्रकाश से आती है। जीवन में शांति की प्राप्ति हो ही तब पाती है, जब हम अपने सत्यस्वरूप को जानकर-पहचानकर अपने जीवन लक्ष्य को प्राप्त करते हैं। जीवन का लक्ष्य यदि मात्र अपनी क्षुधा की पूर्ति कर लेना होता तो पशु हमसे कई गुना बेहतर तरीके से इस कार्य को करते हैं। यह भी सत्य है कि जीवन का लक्ष्य मात्र परिवार बड़ा कर लेना होता तो अनेकों ने इस माध्यम से अपने जीवन लक्ष्य की पूर्ति कर ली होती। यह एक शाश्वत सत्य है कि मनुष्य का जीवन हमें इसीलिए मिलता है, ताकि हम अपने मूलस्वरूप को, दैवी विरासत को, भगवान के अंश होने के सत्य को स्वीकार करते हुए, आंतरिक उत्कृष्टता के पथ का पालन करते हुए देवमानवों जैसा जीवन जी सकें।

परमपूज्य गुरुदेव ने इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए प्रत्येक गायत्री परिजन के लिए एक ही लक्ष्य निर्धारित किया—'मनुष्य में देवत्व का उदय, धरती पर स्वर्ग का अवतरण।' दिखने में बड़ा व महत्त्वाकांक्षी दिखते हुए भी इस लक्ष्य की पूर्ति सहजता से संभव है। इस पथ से हम कभी भटके नहीं, इसलिए हर परिजन को हर समय मिशन के वास्तविक लक्ष्य को स्मरण रखने की जरूरत है।

परमपूज्य गुरुदेव ने गायत्री परिवार की स्थापना का लक्ष्य मनुष्य में अंतर्निहित देवत्व को जगाना, उसकी भावनाओं का परिष्कार करके उसका भावनात्मक नवनिर्माण करना रखा था। बाह्य आडंबर एवं विज्ञापनबाजी न कभी हमारा उद्देश्य थे और न भविष्य में कभी हो सकते हैं।

इसी के साथ प्रत्येक परिजन को स्मरण रखने की आवश्यकता है कि गायत्री परिवार के सदस्य होने के नाते यह हमारा कर्त्तव्य हो जाता है कि स्वयं को 'पीड़ा व पतन के निवारण' जैसे कार्य में निरत रखें। कोई व्यक्ति दुःख, कष्ट, वेदना में है तो उसकी वेदना के निवारण का माध्यम हम बन सकें, इससे बढ़िया जीवन का और क्या उपयोग हो सकता है?

इसके साथ ही यदि व्यक्ति अपने जीवन लक्ष्य को भूलकर, उससे पतित होकर—नरपशु व नरपामर जैसा जीवन व्यतीत कर रहा है तो उसे उस पथ से हटाकर जीवन लक्ष्य पर चलने के लिए प्रेरित करना भी गायत्री परिजन होने के नाते हमारा दायित्व बन जाता है।

प्रत्येक गायत्री परिजन को यह भी स्मरण रखने की जरूरत है कि गायत्री परिवार का उद्देश्य स्मरण रखने के अतिरिक्त हमारे व्यक्तित्व में एक और गुण का होना अनिवार्य हो जाता है और उसका नाम है—श्रमशीलता। शरीर की कीमत श्रम से है।

इस संसार की सारी प्रगति का आधार श्रम है। जो परिश्रमशीलता को भुला बैठते हैं—उनका शरीर बीमारियों का और मन समस्याओं का घर बन जाता है। श्रमशीलता हमारे जीवन का अभिन्न अंग बने, इसके लिए हमें अपने एक-एक क्षण का सदुपयोग करने की सोचना चाहिए। कोई भी क्षण निरर्थक कार्यों में व्यतीत न हो, इसको सुनिश्चित करना भी एक तरह की साधना ही है। इसके साथ ही यह भी सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि जो कार्य हम कर रहे हैं, उस कार्य की गुणवत्ता में अहर्निश वृद्धि होती चले।

इसके साथ ही अपनी दिनचर्या को, अपनी कर्मभूमि को, अपनी कार्यप्रणाली को सुव्यवस्थित रखना भी हमारा एक महत्त्वपूर्ण दायित्व हो जाता है। हमें मिले प्रत्येक कार्य को हम यह सोचकर करें कि ये हमारा श्रेष्ठतम कार्य हो। हर छोटे-से-छोटे कार्य को जब हम पूर्ण मनोयोगपूर्वक करते हैं तो हमारा जीवन व्यवस्थित भी होता है और साथ ही आध्यात्मिक प्रगति को भी प्राप्त करता है।

यह भी ध्यान रखा जाए कि इन गुणों को अपने व्यक्तित्व का अंग बनाते समय हमारे जीवन में शिष्टता, उदारता, आत्मीयता भी आएँ। कभी-कभी आदर्शवादिता को अंग बनाते समय व्यक्ति यह भूल ही जाता है कि इन गुणों को दूसरों पर थोपा न जाए, बल्कि संयमशीलता से उनको इन गुणों को उनके व्यक्तित्व में धारण करने को कहा जाए, ताकि उनका जीवन समग्रता से आगे बढ़ सके।

वर्तमान परिस्थितियों में हमारा जीवन संयमित, संतुलित व सकारात्मक भाव से आध्यात्मिक उन्नति को प्राप्त हो—यह सुनिश्चित करने के लिए इन गुणों को धारण करना प्रत्येक गायत्री परिजन का नैसर्गिक दायित्व हो जाता है। ❑

इस भूतल को ही मैं स्वर्ग बनाने आई

आत्मीय बंधुओ! अखण्ड ज्योति का सूत्र संचालन ईश्वरीय प्रेरणा और ऋषि संकल्प के आधार पर किया जाता रहा है। यह कोई सामान्य साहित्यिक पत्रिका मात्र नहीं है, अपितु एक महान उद्देश्य को समर्पित विश्वव्यापी मिशन को संचालित करने वाला चैतन्य प्राण-प्रवाह है। इसके प्रत्येक शब्द, विचार और भावों में समाहित चिंतन ने लाखों-करोड़ों लोगों के जीवन को परिवर्तित कर सार्थक दिशा में चला देने का ऐतिहासिक पुरुषार्थ प्रत्यक्ष कर दिखाया है।

अखिल विश्व गायत्री परिवार के रूप में दिखाई पड़ने वाला यह स्वयंसेवकों का अद्वितीय विराट संगठन अखण्ड ज्योति की चिंतन चेतना और प्राण-ऊर्जा का ही साकार रूप है। जनमानस के अंत:भावों-विचारों को उद्वेलित कर सृजनकारी दिशा में मोड़ देने वाले प्रखर चिंतन से अखण्ड ज्योति ने इक्कीसवीं सदी में नूतन इतिहास की सृष्टि की है। इसकी तुलना किसी भी स्तर से अन्य किन्हीं पत्र-पत्रिकाओं से कर पाना असंभव है।

जो पाठकवृंद लंबे समय से इस पत्रिका से जुड़े हैं, वे अवश्य ही इस सत्य को महसूस करते हैं कि अखण्ड ज्योति ने मानवमात्र के जीवन को सफल एवं सार्थक बनाने वाली विचारधारा का सृजन एवं प्रसार किया है और जो इस ओर चलने को तत्पर हुए उनको समर्थ मार्गदर्शन भी प्रदान किया है। इतिहास साक्षी है कि इसे पढ़ने वाला पाठक समुदाय मात्र पढ़ने तक सीमित नहीं रहा, अपितु वह इसमें प्रस्तुत भावधारा से जुड़कर नवनिर्माण के कार्य को करने में प्राणपण से जुट गया है।

इसका कारण है कि अखण्ड ज्योति की प्रेरणा सदैव अध्यात्मवादी रीति-नीति वाली जीवन-दृष्टि उत्पन्न कर एक आदर्श और सार्थक जीवनशैली का निर्माण करती है और इसका प्रखर चिंतन जीवन की समस्त समस्याओं का युगानुरूप समाधान प्रस्तुत करता है। जीवन को समग्रता में प्रकाशित करने वाला इसका तत्त्व चिंतन, इसकी क्रमबद्ध विषयवस्तु और रोचक-सरल भाषाशैली जनमानस का ठीक वैसे ही मार्गदर्शन करती है, जैसे अबोध बालक को प्रौढ़ बनाने के लिए अभिभावक अपनी भूमिका निबाहते हैं।

प्रत्येक वर्ष के बारह अंकों में लगभग तीन सौ-साढ़े तीन सौ लेखों को पाठकों तक पहुँचाया जाता है। सामयिक समस्याओं-संदर्भों से लेकर धर्म, अध्यात्म, संस्कृति, शिक्षा स्वास्थ्य, साधना, साहित्य, समाज, कला, विज्ञान, शोध, चिकित्सा आदि विविध विषयों के लेख इसमें सम्मिलित होते हैं। इन तथ्यों से सहज अनुमान लगाया जा सकता है कि विश्वमानवता के उत्थान और नवनिर्माण के प्रति अखण्ड ज्योति की संवेदनशीलता उसके आरंभकाल से अब तक निरंतर कितनी गहन और सक्रिय बनी रही है।

यह बात कहने की नहीं है, परंतु नवीन पाठकों को प्रेरित करने वाली है कि अन्य पत्र-पत्रिकाओं को जैसे उलट-पलटकर उनके पाठक रद्दी की टोकरी में पटक देते हैं या कागजों का पुलिंदा बनाकर किसी कोने में पटक देते हैं, यह बात अखण्ड ज्योति के विषय में कभी नहीं रही है। पाठकों-परिजनों द्वारा इसके प्रत्येक अंक को आदि से अंत तक कई बार पढ़ा जाता है। अपने प्रियजनों को अनुरोध करके आग्रहपूर्वक पढ़ाया जाता है और इसमें प्रकाशित विचारों को अपने निजी विचार समझकर फैलाया जाता है।

पत्रिका और पाठक का ऐसा अनुपम अंतर्संबंध, शायद ही अन्यत्र कहीं दिखाई दे, लेकिन इस चिंतन चेतना की दिव्यधारा को विश्व-वसुधा के हर कोने में पहुँचाना अभी शेष है। आधुनिक युग में मानव सभ्यता जिस तेजी से विनाशकारी प्रवृत्तियों का सृजन करने में जुटी है, इसे रोकने

के लिए अखण्ड ज्योति का क्रांतिकारी चिंतन ही उसे सन्मार्ग और सत्प्रवृत्तियों की ओर मोड़ने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने में सक्षम है। यह युगधर्म की संवाहक है और युग की सभी समस्याओं के समाधान अपने कलेवर में समाहित किए हुए है।

धर्म, अध्यात्म, संस्कृति और जीवनदर्शन से जुड़ी सैकड़ों पत्र-पत्रिकाओं के बीच अखण्ड ज्योति एक प्रकाश स्तंभ की भाँति है। वैसे तो पत्रिकाओं का प्रकाशन अब व्यवसाय बन चुका है तथापि मिशन के रूप में संचालित पत्रिकाएँ दुर्लभ हैं। ऐसे में अखण्ड ज्योति ने अपने आदर्शों एवं मानकों के अनुरूप महान उद्देश्य को समर्पित पत्रिका होने का आत्मगौरव प्राप्त किया है।

इसके मुखपृष्ठ पर छपने वाला यह वाक्य—'**धर्म एवं अध्यात्म के तत्त्वज्ञान का वैज्ञानिक विश्लेषण**' स्वयं में इसकी विशिष्ठता को स्पष्ट करता है। जहाँ अन्य पत्र-पत्रिकाओं की धर्म-अध्यात्मवादी प्रवृत्ति में प्राचीन आदर्शों, सिद्धांतों, प्रेरणास्पद दृष्टांतों का ज्ञानवर्द्धन, विवेचन-विश्लेषण तो प्रस्तुत होता है, परंतु धर्म और अध्यात्म जगत् के शाश्वत कहे जाने वाले वे मौलिक सूत्र एवं जीवनमूल्य उभरकर सामने नहीं आते, जो मौजूदा जीवन की व्यावहारिक चुनौतियों का सामना कर सकें।

अखण्ड ज्योति के उक्त छपने वाले वाक्य का मर्म यही है कि यह प्रचलित परंपराओं से अलग जीवन के मूलभूत सिद्धांतों, सूत्रों और मूल्यों को तर्क, तथ्य और व्यावहारिकता की कसौटी पर रखकर प्रामाणिकता के साथ प्रस्तुत करती है। समाज में दोनों तरह के लोग हैं—एक वे जो जीवन संघर्षों के बीच परेशान हैं, किंतु अध्यात्म और धर्म के गूढ़ एवं दुष्कर सिद्धांतों-प्रक्रियाओं को व्यवहार में लाने में असमर्थ हैं। और दूसरे वे जो धर्म-अध्यात्म में उपलब्धियों के चक्कर में फँसकर भ्रमित हो भटकते हैं।

अखण्ड ज्योति का चिंतन इन दोनों तरह की समस्याओं का समर्थ मार्गदर्शन करता आया है। आज भी इस क्षेत्र में अनेक भ्रांतियाँ और विडंबनाएँ मौजूद हैं, जिन्हें अखण्ड ज्योति के प्रकाश से उज्ज्वल बनाया जाना आवश्यक है।

अखण्ड ज्योति की अद्यतन यात्रा में पाठकगणों का अंत:करण ही इसके चिंतन की कर्मभूमि रहा है और पाठकों का पुरुषार्थ ही इस चिंतन की ऐतिहासिक सफलता का आधार बना है। इसी संबंध को आगे और अधिक प्रगाढ़ और व्यापक बनाने की आवश्यकता है, ताकि भटकती मानवता के हरेक अंश को इसके जीवन-ज्योति कणों से आलोकित किया जा सके।

अब तक की यात्रा में अखण्ड ज्योति पाठक परिवार ने ही इस युगचेतना के प्रवाह को बनाए रखने और विस्तृत करने को युगधर्म के रूप में अपनाया है और संपूर्ण विश्वास है कि आगे भी यह परंपरा लक्ष्यप्राप्ति तक यों ही बनी रहेगी।

समय की अपनी गति है और इस गति के साथ-साथ परिवर्तनशीलता का शाश्वत नियम भी है। समयानुसार यह परिवर्तन व्यक्ति और समाज में भी घटित होता रहता है। प्रारंभ में अखण्ड ज्योति के समक्ष जो व्यक्ति और समाज प्रस्तुत था, अब वह समय के साथ काफी बदल चुका है। उसके रहन-सहन ही नहीं, अपितु सोचने-समझने और जीवन जीने के तरीके भी परिवर्तित हो चुके हैं।

ऐसे में अखण्ड ज्योति के समक्ष भी समयानुरूप परिवर्तन की चुनौती है। नया जमाना अपनी समस्याओं को नए ढंग से देखता है और उनका समाधान भी नए तरीके से प्रस्तुत करना आवश्यक है, तभी हम उसके जीवन में परिवर्तन करने में सफल हो सकते हैं। यह कदापि नहीं भूलना है कि समाज का एक बहुत बड़ा वर्ग अभी भी इस जीवन-ऊर्जा के प्रवाह से वंचित है और उन सभी तक इस चैतन्य प्रवाह को ले जाने की जिम्मेदारी ऋषियुग्म द्वारा आप-हम सभी को सम्मिलित रूप से सौंपी गई है।

इसी दायित्व का स्मरण करके परमपूज्य गुरुदेव ने जब अखण्ड ज्योति का प्रकाशन आरंभ किया तो उसके उद्देश्य के विषय में लिखा—

संदेश नहीं मैं स्वर्गलोक का लाई।
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आई॥

स्पष्ट है कि जिस चेतना के प्रवाह का उद्देश्य धरती पर स्वर्ग का अवतरण करना रहा हो उसे अनेकों लौकिक विषमताओं का सामना करना पड़ता है। ऐसी ही एक चुनौती विगत दिनों कागजों की दरों में हुई वृद्धि है। युद्ध की परिस्थितियों के कारण कागजों की दरें विगत तीन वर्षों में दो बार बढ़ चुकी हैं। यही कारण है कि अनेक पत्र-पत्रिकाओं के वार्षिक चंदे में बड़ी बढ़ोत्तरी हुई है।

इन चुनौतियों को ध्यान में रखकर बड़े भारी मन से अखण्ड ज्योति पत्रिका को भी अपनी दरों को बढ़ाने के लिए विवश होना पड़ रहा है एवं चंदे की नई दरों को आगामी वर्ष 2023 से लागू किया जा रहा है। ऐसा करते समय हमारे मन बहुत भारी हैं, परंतु लौकिक चुनौतियों का सामना करने के लिए इसके अतिरिक्त अन्य कोई उपाय अभी दृष्टिगोचर होता भी नहीं है।

यही कारण है कि आगामी वर्ष जनवरी—2023 से अखण्ड ज्योति का वार्षिक चंदा 300 रुपये किया जा रहा है। साथ ही अखण्ड ज्योति का आजीवन 20वर्षीय चंदा 6000 रुपये किया जा रहा है। इस बढ़ोत्तरी को हमारी विवशता के रूप में ही लिया जाना चाहिए।

इस पत्रिका के उद्देश्य के रूप में सुरक्षित दैवी संकल्प को पूर्ण करने के उद्देश्य से ही इस निर्णय को लिया जा रहा है, ताकि इस भूतल को स्वर्ग बनाने का उद्देश्य निर्विघ्न संपन्न हो सके और यह चेतना अबाधित रूप से बहती रहे। ❐

चंदा वृद्धि की सूचना

हमारे अखण्ड ज्योति पत्रिका के परिजन-पाठकों को हमें बड़े भारी मन से सूचित करना पड़ रहा है कि कागज के मूल्यों एवं छपाई के अन्य साधनों के मूल्यों में बेतहाशा वृद्धि होने के कारणों से अखण्ड ज्योति का चंदा (सदस्यता शुल्क) जनवरी—2023 से बढ़ाना पड़ रहा है। बढ़ी हुई दरें इस प्रकार से हैं—

1. वार्षिक चंदा (भारत में) — 300 रुपये
2. आजीवन 20वर्षीय चंदा (भारत में) — 6000 रुपये
3. वार्षिक चंदा (विदेश में) — 1800 रुपये

अँगरेजी द्विमासिक अखण्ड ज्योति पत्रिका की बढ़ी हुई दरें—

1. वार्षिक चंदा (भारत में) — 170 रुपये
2. वार्षिक चंदा (विदेश में) — 1300 रुपये

आशा ही नहीं, विश्वास है कि परिजन-पाठक इस प्राण-प्रवाह को गतिशील बनाए रखेंगे।

—व्यवस्थापक

अखण्ड ज्योति की ज्ञान किरण से

सघन तिमिर ने आज विश्व को, चारों ओर से घेरा।
अखण्ड ज्योति की ज्ञान किरण से, होगा दूर अँधेरा॥

भटक रहे हैं इधर-उधर हम, सत्पथ प्राप्त नहीं होता,
कर्मकांडों में पूजा उलझी, कर्मों पर विश्वास नहीं होता,
गुरुवर के पथ पर चलकर ही, पाएँगे सुखद सवेरा।
अखण्ड ज्योति की ज्ञान किरण से, होगा दूर अँधेरा॥

समस्त समस्याओं का समाधान, गुरु ने अध्यात्म बताया,
मन-वाणी व निज जीवन से जी करके दिखलाया,
धर्म और कर्त्तव्य एक है, जिसको पाखंडों ने घेरा।
अखण्ड ज्योति की ज्ञान किरण से, होगा दूर अँधेरा॥

प्रज्ञायुग आएगा निश्चित, महाकाल ने की तैयारी,
युगधर्म निभाएँ आगे बढ़कर, यही हमारी जिम्मेदारी,
सत्कर्मों से खुद को जोड़ें, दुष्प्रवृत्ति न करें बसेरा।
अखण्ड ज्योति की ज्ञान किरण से, होगा दूर अँधेरा॥

बढ़ें-बढ़ाएँ, उठे-उठाएँ, मनुष्यता वास्तविक धर्म है,
शक्ति-साधना करें विश्वहित, असली यही धर्म-मर्म है,
सर्वोत्तम है मानव जीवन, काटें भवबंधन का घेरा।
अखण्ड ज्योति की ज्ञान किरण से, होगा दूर अँधेरा॥

—विष्णु शर्मा (कुमार)
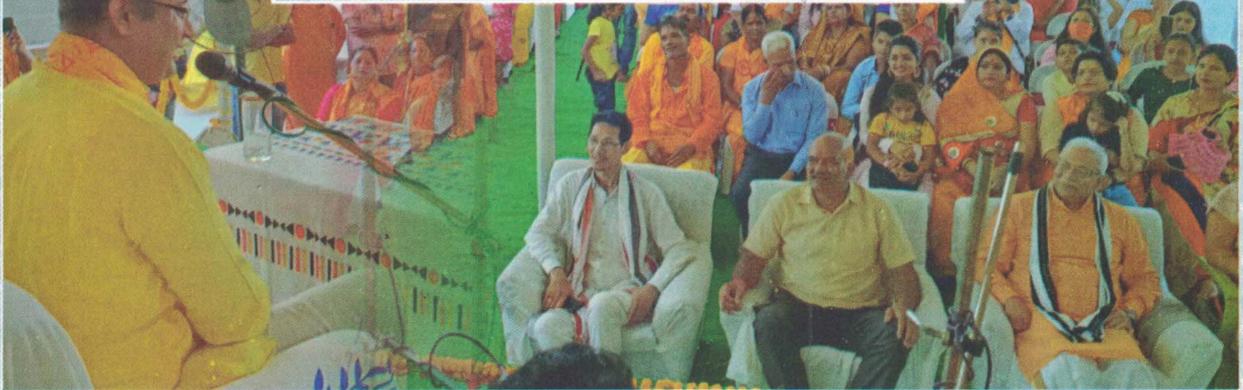
आत्मीयता विस्तार कार्यक्रम के अंतर्गत प्रतिकुलपति देव संस्कृति विश्वविद्यालय द्वारा पूर्वोत्तर भारत में सघन प्रवास
अरुणाचल प्रदेश, असम के परिजनों से सघन संपर्क एवं भावी योजनाओं पर विचार-विमर्श

अखण्ड ज्योति
(मासिक)
R.N.I. No. 2162/52

www.awgp.org

प्र. ति. 01-10-2022
Regd. N0. Mathura-025/2021-2023
Licensed to Post without Prepayment
N0. : Agra/WPP-08/2021-2023
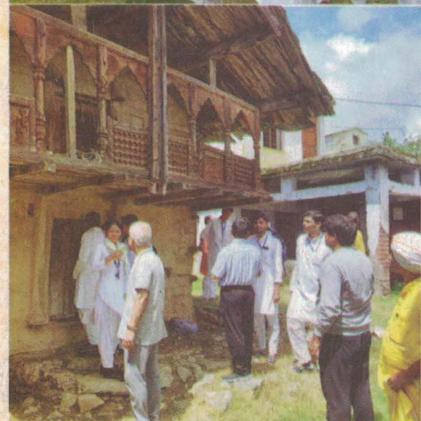
केंद्र सरकार की योजना **'उन्नत भारत अभियान'** के अंतर्गत देव संस्कृति विश्वविद्यालय द्वारा गोद लिए गए ग्राम उद्पाल्टा, देहरादून (उत्तराखंड) में विद्यार्थियों द्वारा सघन वृक्षारोपण एवं जनसंपर्क

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक –मृत्युंजय शर्मा द्वारा जनजागरण प्रेस, बिरला मंदिर के सामने, जयसिंहपुरा, मथुरा से मुद्रित व अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामंडी, मथुरा–281003 से प्रकाशित। संपादक–डॉ. प्रणव पण्ड्या।
दूरभाष–0565–2403940, 2402574, 2412272, 2412273 मोबा.–09927086291, 07534812036, 07534812037, 07534812038, 07534812039
ईमेल–akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org